जगदीश चतुर्वेदी का रचना-संसार
JAGDISH CHATURVEDI KA RACHANA SANSAR

Thesis submitted to
Cochin University of Science and Technology
for the award of the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By
SUJA C.

Supervising Teacher
Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1995

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis titled "JAGDISH CHATURVEDI KA RECHNA SANSAR" is a bona fide record of work carried out by Ms.Suja, C., under my supervision for the Degree of Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,
Kochi 682022

Prof. (Dr.) A.Aravindakshan
Supervising Teacher

पुरोवाक्

हिन्दी कविता के इतिहास में जगदीश चतुर्वेदी का नाम काफी चर्चित रहा है । अकविता के प्रवर्तक के रूप में वे विख्यात हैं । कविता के अलावा कहानी, आलोचना और नाटक जैसी विधाओं में भी उन्होंने अपनी पहचान बना ली है । उनकी रचनाएँ अपनी तिरस्कार भरी मुद्रा के कारण अक्सर चर्चा के केन्द्र में रही हैं ।

कविता के प्रति मेरी विशेष रुचि रही है । आधुनिक कविता के विभिन्न चरणों से परिचित होने के उपरान्त मुझे लगा कि अकविता पर अधिक शोध कार्य नहीं हुए हैं । इसलिए जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं का अध्ययन एम. फिल. के लघु शोध प्रबन्ध के विषय के रूप में लेने का मैंने निश्चय किया है । मुझे यह भी लगा कि बहुत सारे आरोपों के कारण जगदीश चतुर्वेदी की रचनाओं का सही मूल्यांकन सही ढंग से न हो पाया है । उनकी रचनाओं से होकर गुज़रते समय मुझे लगा कि उनमें रचनात्मक संभावनाओं की कमी नहीं है । उनकी रचनाएँ समय के सच को अपने अन्दाज़ में प्रस्तुत करती हैं । इसलिए शोधप्रबन्ध के विषय के रूप में जगदीश चतुर्वेदी के रचना-संसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन जैसा विषय मैं ने चुना है । इसमें उनके कवि-कर्म को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि उनका कवि-रूप अधिक संश्लिष्ट और सार्थक है ।

जगदीश चतुर्वेदी के रचना-संसार पर केन्द्रित प्रस्तुत शोधप्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है । वे इस प्रकार हैं -

1. जगदीश चतुर्वेदी व्यक्ति और साहित्यकार ।
2. अकविता का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन ।

3. जगदीश चतुर्वेदी की अकविता का अध्ययन ।
4. जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती कविताओं का अध्ययन ।
5. शिल्प के नये आयाम और जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ ।
6. जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों का अध्ययन ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का पहला अध्याय "जगदीश चतुर्वेदी व्यक्ति और साहित्यकार" है । व्यक्तित्व का विश्लेषण रचनाकार की मनोभूमि की पहचान के संदर्भ में बहुत ही आवश्यक है । अतः पहले उनके रचना-व्यक्तित्व का विश्लेषण करके फिर उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । अलावा इसके उनके रचना-व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को भी प्रस्तुत किया गया है । उनके संपादन-कार्य और अनुवाद-कार्य पर भी प्रकाश डाला गया है ।

अकविता हिन्दी कविता के इतिहास में एक प्रमुख अध्याय है। यह सही है कि कुछ आलोचकों ने इसका विरोध किया है । लेकिन अकविता ने हिन्दी कविता को एक नई दिशा दी । इसलिए अकविता का अध्याय विशेष महत्व रखता है, रचनाकार जगदीश चतुर्वेदी की रचनाओं के सही अध्ययन के लिए अकविता का विश्लेषण अनिवार्य है । अतः दूसरा अध्याय "अकविता का प्रवृत्ति-मूलक अध्ययन" है । इस अध्याय में अकविता के प्रादुर्भाव के परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करने के पश्चात् प्रवर्तक कवि, उनकी कविता की विशेषताएँ तथा उनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ आदि पर विचार प्रस्तुत किया गया है ।

तीसरा अध्याय 'जगदीश चतुर्वेदी की अकविता का अध्ययन' है । सुविदित बात है कि जगदीश चतुर्वेदी अकविता के प्रमुख प्रवक्ता है । लेकिन उनकी काव्य-यात्रा का प्रारंभ एक अकवि के रूप में नहीं हुआ । उनकी प्रारंभिक कवि-मानसिकता एक स्वच्छन्द काल्पनिक कवि की है । भावनाओं की उन्मुक्तता में विचरण करने वाले कवि के रूप में यहाँ उनके दर्शन होते हैं । प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य आदि के साथ-साथ उनकी सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना का परिचय भी प्रारंभिक कविताओं में मिलता है । यह उनकी कविता का पहला पड़ाव है । यह एक सामान्य पड़ाव है । लेकिन उनकी कवि मानसिकता के बदलाव के संदर्भ में इस पड़ाव का विशेष महत्व है । अत: प्रारंभिक कविताओं पर विचार करते हुए जगदीश चतुर्वेदी के अकविताई-रूख का विश्लेषण किया गया है । महानगर दिल्ली की यांत्रिक-ज़िन्दगी ने कवि को बहुत प्रभावित किया । महानगर के विषाक्त वातावरण में अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए कवि ने निषेध और विद्रोह को स्वीकारा जिसके अन्तर्गत सड़ी-गली परंपराओं और आरोपित आस्थाओं के प्रति कड़ुवाहट से भरा हुआ स्वर मुखरित है । जगदीश चतुर्वेदी की अकविताएँ अतीत, परंपरा, आस्था, मूल्य सबका निषेध करती हैं । अकविता की सभी प्रवृत्तियाँ जगदीश चतुर्वेदी की अकविता में मिलती हैं, परन्तु अकविता के अन्य कवियों की तुलना में उनका स्वर आक्रामक अधिक है । यहाँ उनकी अकविताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

चौथा अध्याय 'जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती कविताओं का अध्ययन' प्रस्तुत करता है । समकालीन कविता का पथ प्रशस्त करने में अकविता ने अपना योग दिया है । अकविता का दौर सहज ही समाप्त हो गया । जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ सकारात्मक होने का परिचय देने लगीं । वास्तव में यह समय के सरोकार का सूचक है । परवर्ती कविता समकालीन कविता के

दौर की कविता है । जगदीश चतुर्वेदी ने बगैर किसी दर्शन या विचारधारा के अपनी सकारात्मक दृष्टि तथा आस्था से अपने कवि-कर्म के दायित्व को निभाया है । इस दौर की कविताएँ धरती और प्रकृति के साहचर्य का परिचय देती हैं । इन कविताओं में उखड़ेपन के बदले कहीं जमने की लालसा प्रकट होती है । इस तरह परवर्ती कविताएँ जीवन की सृजनात्मकता के विभिन्न आयामों का संस्पर्श करती हैं ।

काव्य तथा शिल्प अन्योन्याश्रित हैं । फिर भी शिल्प पर अलग से विचार करने की अपेक्षा होती ही रहती है जो प्रत्येक युग की रचनात्मक मौलिकता को समझने में सहायक है । पाँचवाँ अध्याय है -"शिल्प के नये आयाम और जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ" । अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति में सहायक साधन ही वास्तव में शिल्प के अन्तर्गत आते हैं । विशेष रूप से कवि द्वारा प्रयुक्त बिम्बों, प्रतीकों और मिथकों का कविता की संप्रेषणीयता में महत्त्व है । अलावा इसके काव्यभाषा के विभिन्न स्तर भी काव्य-शिल्प के अन्तर्गत विचारणीय है । प्रस्तुत अध्याय में जगदीश चतुर्वेदी की तमाम कविताओं की शिल्पगत विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है । प्रारंभिक कविताओं की शिल्प-भंगिमा अकविता से भिन्न है । परवर्ती कविता की सकारात्मकता के अनुरूप शिल्प में भी बदलाव के चिह्न लक्षित होते हैं ।

जगदीश चतुर्वेदी अकविता के प्रमुख कवि होने के साथ अकहानीकार भी है । छठे अध्याय में जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत करके यह देखा गया है कि उनकी कहानियों का रचनात्मक महत्त्व क्या है । उनकी कहानियाँ खोखले आदर्शों पर प्रहार करती हैं । अपने देखे

भोगे समाज का पूरी ईमानदारी से चित्रण उनकी कहानियों की विशेषता है । ये कभी-कभी अतिरंजित और वर्जनामुक्त दीखती है । पर तमाम अतिरंजनाओं और वर्जनामुक्ति के बावजूद ये कहानियाँ हमारे झूठ पर आघात करती हैं । अत: उनकी कहानियाँ झूठी स्थितियों का तिरस्कार करती हैं । यहाँ तिरस्कार एक मूल्य बन गया है । इस अध्याय के आरंभ में अकहानी संबंधी संक्षिप्त चर्चा है तत्पश्चात् उनकी कहानियों का विश्लेषण है । उसके बाद कहानी-शिल्प पर प्रकाश डाला गया है ।

उपसंहार में अकथिता और अकहानी की सार्थकता और उसके ऐतिहासिक महत्व को बिना किसी पूर्व-ग्रह के साथ रेखांकित करने का प्रयास किया गया है ।

यह शोधकार्य पूज्य गुरुजी हिन्दी विभाग के प्रोफेसर, डा.ए.अरविन्दाक्षन जी के निर्देशन से संपन्न हुआ है । उनके बहुमूल्य सुझाव समय-समय पर मुझे मिलते रहे हैं । उनके प्रति आभार प्रकट करते हुए मैं वास्तव में बहुत अधिक आनंद का अनुभव कर रही हूँ । जगदीश चतुर्वेदी जी ने भी इस शोधकार्य की पूर्ति में मुझे बहुत मदद दी है । उन्होंने अनुपलब्ध पुस्तकें प्रदान कर मुझे प्रोत्साहित किया है । उनके साथ हुई लंबी बातचीत ने मेरी शंकाओं का समाधान कर इस शोधकार्य की पूर्ति के लिए सक्रिय सहयोग दिया है । उनके प्रति मैं आभारी हूँ । डॉ.एम.षण्मुखम् जी की सहायता भी इस शोध कार्य के संपन्न होने में मुझे मिली है । उनके प्रति मैं एहसानमन्द हूँ । विभाग के अन्य गुरु-जन और मित्रों के प्रति भी मैं आभारी हूँ । पुस्तकालय के अधिकारियों की कृपा भी इस शोधकार्य की पूर्ति में मेरी सहायता करती रही । उनके प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ ।

अकविता, अकहानी और जगदीश चतुर्वेदी को निकट से देखने का मेरा विनम्र प्रयास है । कोई भी नई साहित्यिक प्रवृत्ति साहित्य को अवरुद्ध नहीं करती, उसे आगे बढ़ाती है । जगदीश चतुर्वेदी की रचनाओं का अध्ययन करते समय मेरी यही धारणा रही है । सुधी विद्वानों के समक्ष विनम्रतापूर्वक मैं शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करती हूँ ।

सुजा. सी.

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय,
कोचिन - 22.

29. 12. 1995.

पृष्ठ संख्या

मूल्य विघटन के प्रति असंतोष - विसंगति तथा
अस्मिता का संकट - अस्तित्ववादी विचारधारा और
मृत्युबोध - राजनीतिक विसंगतियाँ - सर्वनाश की आकांक्षा ।

अध्याय - चार 117 - 145

जगदीश चतुर्वेदी की अकवितेतर-परवर्ती-कविताओं का अध्ययन

सूर्यपुत्र - मूल्यहीनता का विरोध तथा मूल्यों की तलाश -
आत्मसाक्षात्कार की दिशाएँ - प्रकृति तथा जीवन-यथार्थ
का संदर्भ - दार्शनिक चेतना की झाँकी - अकेलापन की
भावना - सामाजिक सरोकार के शब्द - मशीनी सभ्यता ।

अध्याय - पाँच 146 - 192

कविता-शिल्प के नये नये आयाम और जगदीश चतुर्वेदी की
कविताएँ

कविता और शिल्प - अकविता का काव्य-शिल्प -
जगदीश चतुर्वेदी का काव्य-शिल्प - कविता के भीतर
नए रूप को तलाशने की प्रवृत्ति - विशिष्ट शब्दों की
विशिष्ट भंगिमा ।

पृष्ठ संख्या

अध्याय - छः 193 - 240

अकहानी और जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ

अकहानी का आरंभ - जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ - व्यवस्था-विरोध तथा असमानता के विरुद्ध संघर्ष - प्रेम संबंधों का नया तेवर - विवाहेतर प्रेम संबंध का परिदृश्य - जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों की शिल्प-विधि ।

उपसंहार 241 - 246

संदर्भ-ग्रंथ-सूची 247 - 255

अध्याय एक

जगदीश चतुर्वेदी व्यक्ति और साहित्यकार

हिन्दी कविता के इतिहास में जगदीश चतुर्वेदी का नाम चर्चित है । अकविता के प्रवर्तक के रूप में वे चर्चा के केन्द्र में आए । परन्तु कहानीकार, नाटककार और आलोचक के रूप में भी उनकी अलग पहचान है । अपनी विशिष्टता के कारण ही उनकी रचनाएँ चर्चा के केन्द्र में रही हैं । समय के बदलाव को अपने ढंग से पहचानने की अप्रतिम क्षमता के कारण वे विख्यात हुए । किसी भी राजनीतिक दल के वे पक्षधर नहीं, इसलिए उनकी रचनाओं में दलगत उन्मुखता नहीं है । पर वे सच को अपने अन्दाज़ में प्रस्तुत करते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी रचनाओं का, खासकर कविता का, समय के साथ सीधा सरोकार है ।

जीवन परिवेश

जगदीश चतुर्वेदी का व्यक्तित्व विवादास्पद रहा है । यह विदित बात है कि व्यक्तित्व का विश्लेषण चाहे वह विवादास्पद हो या न हो रचनाकार की मनोभूमि की पहचान के लिए आवश्यक है । व्यक्तित्व के रूपायन में प्रथमत: परिस्थिति का योगदान महत्वपूर्ण है । जगदीश चतुर्वेदी के व्यक्तित्व की विलक्षणता के अनेक कारण हैं । उनका बचपन मध्यप्रदेश के छोटे-छोटे शहरों और कस्बों में बीता । पिता लगातार स्थानांतरित होते रहे । अत: नई-नई जगहों से परिचित होने का अवसर जगदीश चतुर्वेदी को मिला । "कोई कस्बा अत्यंत रमणीक होता था, तो कोई सुरम्य घाटी में बसा हुआ, कोई वनखंडों के बीच, तो कोई मैदानी और पर्वत-श्रेणियों के मध्य भी ।"[1] इस प्रकार के वातावरण ने घुमक्कड स्वभाव तथा एकाकीपन को

---

1. आदिम गंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 8.

भावना को प्रश्रय दिया । साथ ही उनके मन में एक प्रकार के असंतोष का भी उदय हुआ, क्योंकि घनिष्ठता स्थापित करने के पहले ही स्थानांतर की बारी आती थी । माँ की मृत्यु से उनका एकाकीपन और भी बढ़ गया । उनका प्रकृति-प्रेमी मन धीरे-धीरे एकांत का ही एक अंग सा बन गया । उनकी कविताओं में कहीं-कहीं इसकी सूचना मिलती है । उनके अकेलेपन की भटकन और प्रकृति के साथ का संबंध कविताओं में प्रकट है -

"मैं जब बच्चा था
तो अकेलापन मुझे बहुत परेशान करता था
मैं जंगलों में निकल जाता
और चुनता रहता
गूलर के फूल
और देखता रहता
अबाबीलों के घोंसले ।"[1]

प्रकृति में रमने की मानसिकता और प्रकृति के हर रोये-रेशे में निहित सौंदर्य को आत्मसात् करने की भावना ही इसमें व्यंजित है, जिसे कवि के बाल-मन की आकांक्षा की झांकी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । प्रकृति में मग्न उनका हृदय और एकाकी हो चला । अपने मन के विचरण की भावना भी यहाँ प्रकट है । उन्मुक्तता की लालसा भी इसमें ध्वनित है ।

प्रकृति के सान्निध्य ने उन्हें सौंदर्यप्रेमी बना दिया । लेकिन यह सौन्दर्य उतना काल्पनिक नहीं है । इस सौंदर्य में कवि मन की एकान्त-अवस्था के भी बिम्ब है । अतीत की स्मृतियों को ताज़ा करनेवाली

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 9.

कविताएँ द्रष्टव्य हैं -

"अभी भी वह प्रकृति के उस सब्ज बाग में कैद है
जो उसकी मासूम बालमन की मुट्ठियों का खजाना था
मौलसिरी के दरख्त,
बरगद के बूढ़े पेड़ और बबूल की ठंडी हवा
अभी भी उसके कपोलों पर अपनी आभा बिखेरती है ।"[1]

× × × × × × ×

"जब आज़ादी की खुशियाँ मनाई जा रही थीं
तब वह शिवपुरी में था ।
ग्वालियर रियासत की गर्मियों की राजधानी
झरनों और पहाड़ियों का शहर
लाल बजरी की सड़कों पर अनगिनत शीशम
और युकेलिप्टस के पेड़ ।
वहाँ के पहाड़ों से खुशबू आती थी
मौलसिरी और रातरानी की
वहाँ के पार्कों में मोर नाचते थे
और गिलहरियां अपनी छोटी-सी जीभ निकालकर
मुँह चिढ़ाती थीं ।"[2]

उनकी कहानियों में भी यह भाव अंकित है । "रम्भी" कहानी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है -"नित्य एकाग्र चिन्तन में व्यस्त हो वह पहाड़ों पर चढ़ जाता और उगते सूर्य का प्रतिबिंब देखा करता । दिन चढ़ आता और वह घण्टों

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 42.
2. वही - पृ. 47.

बैठा रहता उदास सा, खोया-खोया । दूर तक फैले आम्र वृक्षों की मंजरियों में बैठकर कोयल उसे नित्य राग सुनाती और तट पर बैठे पपीहे उसे "पी कहां" की रट लगाते मिलते ।"[1] इस तरह प्रकृति के साथ उनके नैकट्य का परिचय कविता और कहानियों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है ।

घर का वातावरण पूर्णत: साहित्यिक था । घर पर पत्र-पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती थीं । पूरी लगन से जगदीश चतुर्वेदी पत्रिकाओं में जुट गए । स्कूल के पुस्तकालय ने उनकी साहित्यिक रुचि को बढ़ाया । उनकी साहित्यिक रुचि ने समय-समय पर प्रकाशित पत्रिकाओं की ओर उनको आकृष्ट किया । उनकी कहानी "वैभव का त्याग" सन् 1953 में "वीणा" में प्रकाशित हुई । ज़मीन्दारी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाने के साथ-साथ उसकी खोखली मान्यताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास इस कहानी में हुआ है। "पनिहारी" उनकी प्रारंभिक कविताओं में काफी उल्लेखनीय है । इसका प्रकाशन "अजन्ता" में हुआ । इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि इसके गुजराती तथा मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए । यह गाँव की भोली-भाली पनिहारी का सजीव चित्र अंकित करती है । कवि उसे "निर्धन-अपढ़ की झोंपडी की ज्योति" कहते हैं । इसके अलावा जगदीश चतुर्वेदी के गीत, रुबाइयाँ और कहानियाँ"नई दुनिया", "जागरण" आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं । उन्मुक्त मन से रची गई रचनाएँ प्रस्तुत करने की जो प्रवृत्ति उनमें थी, उसको "मस्ती", "मनोज" जैसी पत्रिकाओं से प्रेरणा मिली । सरस्वती, माधुरी, चाँद, जैसी पत्रिकाओं में भी उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुईं । इस प्रकार इन

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 42.

पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में अपने मौलिक योगदान का परिचय दिया ।

स्कूली-शिक्षा मध्यप्रदेश के कई इलाकों में हुई । विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर से बी.ए. और माधव कॉलेज उज्जैन से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की । यहाँ उन्हें कई अच्छे मित्र मिले, साथ ही अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों से परिचित होने का अवसर मिला । शिवमंगल सिंह सुमन उनके अध्यापक थे । प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, बालकृष्ण शर्मा नवीन, नरेन्द्र धीर, शंकर शेष आदि से परिचित हुआ । भोपाल, आकाशवाणी में रहते वक्त गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी, हरिशंकर परसाई, राजा दुबे आदि से मित्रता स्थापित की । साहित्यिक गोष्ठियाँ, चर्चा, वाद-विवाद आदि का आयोजन माथुरजी के घर पर होता ही रहा । केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय में वे श्रीकांतवर्मा के संपर्क में आये । महेन्द्र भल्ला, नरेश मेहता से भी उनकी मुलाकात हुई । अशोक वाजपेयी, अग्नेय आदि से भी उनका मिलना-जुलना होता रहा । इसलिए आधुनिक साहित्य से संपर्क स्थापित करने का अलग वातावरण उन्हें प्राप्त हो गया ।

"अकविता" काव्य-आन्दोलन के सहयोगियों से उनका परिचय सन् 1961 के आसपास हुआ । श्याम परमार, कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी, कुमार विकल, रवीन्द्र कालिया, रमेश गौड़ आदि के संपर्क से नया कुछ सोचने और साहित्य के क्षेत्र में उसको लागू करने का निर्णय उन्होंने लिया ।

अकविता के विकास के इतिहास में "प्रारंभ" का प्रकाशन काफी महत्वपूर्ण है । जगदीश चतुर्वेदी की पुत्री लिखती है -"पापा ने साहित्य में एक नई काव्यधारा का सूत्रपात किया, जो बड़ी तेज़ी से देश भर में फैली । एक आग सी मानो लग गई थी, पिछली काफ़ी समय से इस काव्यधारा में । उन दिनों साहित्यिक मित्रों का जमघट-सा लगा रहता था । सारे भारतवर्ष के साहित्यकार पापा के पास अनेक प्रश्न लेकर आते रहते थे ।"[1] "प्रारंभ" के अलावा विजय, निषेध, और "अकविता" पत्रिका ने अकविता के विकास में योगदान दिया है ।

कार्यकाल :-

जगदीश चतुर्वेदी कॉलेज ऑफ साइंस नागपुर (1956-57) में प्राध्यापक रहे । कुछ समय तक आकाशवाणी भोपाल में रहने के पश्चात् सन् 1959 में शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार दिल्ली में उनकी नियुक्ति हुई । तत्पश्चात् वे भाषा (त्रैमासिक) का संपादक बने । यहीं पर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के उप-निदेशक के पद से सन् 1991 जनवरी में वे सेवा निवृत्त हुए । संप्रति वे साहित्य लेखन में व्यस्त हैं । आजकल वे "कनाट प्लेस" नाम से एक उपन्यास लिखने में तल्लीन हैं ।

व्यक्ति पक्ष :-

जगदीश चतुर्वेदी शिष्ट और मिलनसार व्यक्ति है । दोस्ती निभाने में उनके जैसे बहुत कम ही लोग मिलेंगे । वे दोस्तों के दोस्त हैं ।

---

1. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, सं. कमल किशोर गोयनका, पृ. 63.

वे अपने दोस्तों की हमेशा प्रेरणा हैं । रवीन्द्र कालिया लिखते हैं - "जगदीश चतुर्वेदी से मेरा बहुत पुराना संबंध है । आज से बीस बरस पूर्व हम एक ही दफ्तर के एक ही कमरे में काम करते थे । जगदीश के साथ रोज़ आठ घंटे दफ्तर में और लगभग चार घंटे कनॉट प्लेस में बीतते थे । मैं ने पाया कि जगदीश दोस्तों का दोस्त है, दुश्मनों का भी दोस्त है ।"[1] अपने मित्रों की साहित्यिक रुचि को उनकी प्रेरणा से बल मिला है । जगदीश चतुर्वेदी स्पष्टवादी है, दृढ-संकल्पी है, और हठी भी है, फिर भी उनके चरित्र में भावुकता का संस्पर्श है । व्यक्तियों और उनकी मित्रता के लिए उनका मन खुला रहता है । एक सहृदय मानववादी साहित्यकार की तमाम बातें जगदीश चतुर्वेदी में मिलती हैं ।

साहित्यिक विचार

जगदीश चतुर्वेदी मानते हैं कि साहित्य को राजनीतिक दबाव से अलग होना चाहिए । राजनीति वास्तव में भ्रष्टाचार का अड्डा बन गई है । राजनीति से साहित्य में प्रतिबद्धता का हस्तक्षेप होता है । प्रतिबद्धता एक बचकानी प्रवृत्ति है । लेखक के स्वच्छन्द और स्वस्थ विचारों को जगदीश चतुर्वेदी काफी महत्व देते हैं । लेखक की स्वाधीनता प्रतिबद्धता से नष्ट होती है । किसी दर्शन या विचारधारा के प्रति पक्षधरता या झुकाव को वे प्रतिबद्धता मानते हैं । वे लिखते हैं - "श्रेष्ठ साहित्य केवल राजनैतिक दबाव या प्रतिबद्धता से नहीं लिखा जा सकता ।"[2] लेखक स्वतंत्र नहीं है तो वह अपनी रचना के प्रति न्याय नहीं कर सकता । ऐसी रचना समाज के लिए हानिकारक भी है । बौना बनकर जीना कायरता का प्रमाण है ।

---

1. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, सं. कमल किशोर गोयनका, पृ. 148.
2. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 13.

साहित्य की रचना मनुष्य की भलाई के लिए होती है । सच्चा साहित्य मानव-विरोधी नहीं होता । सामाजिक कल्याण कला या साहित्य का चरम लक्ष्य है । सामाजिक तथा मानव कल्याण के लिए लिखा गया साहित्य दीर्घजीवी होता है । इसके साथ ही एक रुचि-परिष्कार तथा अत्याधुनिक मनःस्थिति का पर्यवेक्षण भी साहित्य का लक्ष्य है ।

साहित्यकार को समीक्षात्मक दृष्टि से युक्त होना आवश्यक है । सामाजिक बुराई के उत्तरदायी तत्वों का विरोध करना साहित्यकार का ध्येय होता है । काव्य की महत्ता कवि की विचारधारा तथा संस्कृति पर निर्भर है, विषय पर नहीं । "पर मुझे खेद है कि मैं रोटी, हड़ताल या राजनीति जैसे मोटे विषयों पर बात तो कर सकता हूँ, उन्हें काव्य के लिए स्वीकार नहीं कर पाता ।"[1] जगदीश चतुर्वेदी ने "इतिहासहन्ता" की भूमिका में यों कहा है तो लगता है कि उन्होंने एक प्रकार के भावावेग का परिचय दिया हो । परन्तु इस आवेग में भी सच्चाई की झलक है, क्योंकि रोटी, हड़ताल, राजनीति के घेरे से बाहर भी अनेक बातें है, जो काव्य के लिए नितांत अनुकूल है । राजनीति को काव्य के लिए अस्वीकारने की बात इसलिए उन्होंने की कि वह आज संकीर्ण दलबन्दी दृष्टि का परिचायक है । यह आवश्यक भी नहीं है कि हर कोई राजनीतिक दृष्टि से ओतप्रोत हों ।

सौन्दर्यदृष्टि की पक्षधरता

जगदीश चतुर्वेदी का विश्वास है कि साहित्य में मूल प्रश्न दृष्टि का होता है । वह दृष्टि सौंदर्य-विषयक है । कला के अन्तर्निहित

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 7.

तत्वों को उजागर करने में यह सक्षम है । कलाकार का संवेदनशील व्यक्तित्व उन्हें नया आयाम भी देता है । हर रचनाकार का अनुभव-संसार अलग होता है । अपने विशिष्ट अनुभव को रचनाकार वाणी देता है । रचनाकार की मानसिकता को पूर्ण रूप से आत्मसात् करने में पाठक सक्षम होता है तो रचना की महत्ता बढ़ जाती है ।

विद्रोह और निषेध का अर्थ

विद्रोही चेतना जगदीश चतुर्वेदी के व्यक्तित्व का एक अंग है । वर्तमान के प्रति सजगता आधुनिक संवेदना की अनिवार्य शर्त है । आधुनिक संवेदना समकालीन परिवेश से संपृक्त है, प्राचीन संस्कारों, रूढ़ियों, अनुशासनों से मुक्त है । जगदीश चतुर्वेदी पुरानी रूढ़ियों को यों ही अपनाने को तैयार नहीं । वे रूढ़िवादी साहित्य को हेय मानते हैं । साहित्यकार युगीन बदलाव को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझकर उसका अंकन करते हैं । ऐसी हालत में पुरानी मान्यताओं का निषेध तथा नए-नए मूल्यों की स्थापना भी होती है । "आधुनिक साहित्य में यथार्थ के प्रति सजगता है ।" आधुनिक कविता हमें चीज़ों के यथार्थ-रूप दिखाती है । उनके प्रति तथा हमारे अपने के प्रति सजग करती है । इसी सजगता और ज्ञान में विद्रोह निकलता है । कोई भी चीज़ के दबाव को आधुनिक संवेदना से युक्त आदमी सहन नहीं करते, वह विद्रोह करता है ।"[1] व्यक्ति की वास्तविकता के प्रति सजगता और दबाव के प्रति असहिष्णुता विद्रोह को जन्म देती है । यही कारण है कि आधुनिक साहित्य में विद्रोह का स्वर काफी मुखर है ।

---

1. विद्रोह और साहित्य, सं. देवेन्द्र इस्सर व डॉ. नरेन्द्र मोहन, पृ. 103.

अस्तित्व चिन्तन

आज के मनुष्य अपने भाग्य का नियन्ता स्वयं हैं । विघटन और विशृंखलता से भरपूर आधुनिक जीवन में मनुष्य के अस्तित्व की रक्षा कठिन है । इस स्थिति से मानवीय अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष एकमात्र उपाय सिद्ध होता है । इसलिए आधुनिक साहित्य की एक अनिवार्यता के रूप में संघर्ष को माना गया ।

जगदीश चतुर्वेदी का साहित्य व्यक्ति का संसार है । व्यक्ति के अन्तरंग संसार को जब उन्होंने अपना विषय बनाया, किसी भी प्रकार के नियंत्रण को स्थान नहीं दिया । वस्तुतः इस कारण से उनकी रचनाओं पर कुंठाग्रस्तता का आरोप लग गया है । उसमें व्यक्ति का अन्वेषण ही मुख्य है । अकविता में यही स्वर बुलन्द है । व्यक्ति उनके लिए एक माध्यम है - अन्वेषण का । इसी कारण से कविता घोर वैयक्तिक रचना-प्रक्रिया है । "इतिहासहन्ता" की भूमिका में वे स्वीकारते हैं -"कविता मेरे या किसी भी जेनुइन कवि के लिए आत्म-साक्षात्कार या विशिष्ट, अलगावपूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण का सशक्त माध्यम है ।"[1] आत्म साक्षात्कार के क्षणों में व्यक्ति को अपनी सही पहचान होती है । कविता के माध्यम से यह पहचान और व्यक्तित्व का निर्माण संभव होता है । हर किसी का अनुभव विशिष्ट होता है । विशिष्ट अनुभव व्यक्तित्व में विविधता लाता है । अतः सामान्य से इतर व्यक्तित्व का उद्घाटन कविता में होता है । कविता वास्तव में असाधारण की खोज है । असाधारण की प्राप्ति के लिए एक खास प्रकार की रुचि की ज़रूरत है ।

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 7.

रचनाएँ

कविता-संग्रह

जगदीश चतुर्वेदी मूलत: कवि हैं । बचपन से ही उनके मन में कविता के प्रति विशेष रुचि रही है । सन् 1950 से लेकर वे नियमित रूप से काव्य रचना करने लगे । उनकी प्रारंभिक कविताओं का संकलन है "पूर्वराग" जो बाद में सन् 1982 में प्रकाशित हुआ । "पूर्वराग" की कविताओं में विषय की दृष्टि से विविधता है । इसमें प्रकृतिपरक कविताएँ, प्रेमगीत, राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत लंबी कविताएँ, तथा रूबाइयों का समावेश है । सन् 1950 के आसपास लिखी गयी कविताएँ होते हुए भी उन पर छायावादी प्रभाव है । कुछ कविताएँ इस प्रभाव से मुक्त होने का भी परिचय देती हैं । उनकी कविता "पिक रानी । गाओ फाग वसंती हवा चली" इस संदर्भ में उल्लेखनीय है -

"लखकर प्रियतम ऋतुराज कमलिनी मुसकाई
सरसों हल्दी में लिपटी दुलहिन बन आई
झुक गई शर्म से भरी जुही की दो आँखें
बेला ने चुनर ओढ़ उठाई मृदु पाँखें
हर कलिका यौवन मस्त दिख रही भली भली।[1]

"पूर्वराग" की एक चर्चित कविता है पनिहारी, जो अनेक भाषाओं में अनूदित हुई है -

पहनकर ओढ़नी सतरंगिया
गागर कमर पर धर
महावर से सजे पग धर

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 50.

चलीं पनिहारियाँ सुन्दर
× × × ×
जुही सा तन, कली सा मन
जहाँ धड़कन मचलती है
कभी भर नयन लख लेती
जहाँ मदिरा छलकती है"[1]

प्रकृति, प्रेम, सौन्दर्य आदि की लयात्मक अभिव्यक्ति 'पूर्वराग' की कविताओं की खासियत है । इस मानसिकता का एकदम बदला हुआ रूप उनका दूसरा काव्य-संग्रह "इतिहासहन्ता" में दृष्टिगत है । इसका प्रकाशन सन् 1970 में हुआ । अकविता के कवि जगदीश चतुर्वेदी की काव्य-मानसिकता का परिचय इस संकलन की कविताएँ देती हैं । सन् 1960 तक आते-आते नई कविता ने कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से जिस गतिरोध का परिचय दिया, इस से कविता के बचाव का जोखिम भरा कार्य किया जगदीश चतुर्वेदी तथा उनके सहयोगियों ने । इतिहासहन्ता की कविताएँ निषेधात्मकता, आक्रोश, अतीत का नकार, जीवन की विसंगति, महानगरीय जीवन की यांत्रिकता जैसी अकविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का प्रक्षेपण करती हैं ।

महाभारत के चरित्र कर्ण को आधार बनाकर हिन्दी में अनेक काव्य लिखे गये हैं । उनमें जगदीश चतुर्वेदी का मिथक काव्य "सूर्यपुत्र" का महत्व निर्विवाद है । इसका प्रकाशन सन् 1975 में हुआ । कर्ण के माध्यम से

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 19.

कवि ने आधुनिक मानव की यातना, पीडा और अपमानबोध के दर्द को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । कर्ण को अन्त:संघर्ष भोगनेवाले एक निरासक्त योद्धा के रूप में चित्रित करके आज की सामयिक, राजनीतिक विडंबना के बीचों-बीच पिसते हुए मनुष्य की त्रासदी को शब्दबद्ध करने का कार्य जगदीश चतुर्वेदी ने किया है । वस्तुत: यह कथाकाव्य जगदीश चतुर्वेदी की कविदृष्टि में आए बदलाव को सूचित करता है । कर्ण की प्रचलित कथा को उन्होंने अकविता के ढाँचे में प्रस्तुत नहीं किया । कर्ण-कथा को उन्होंने व्यक्ति की अस्मिता की तलाश के संदर्भ में देखा साथ ही साथ उन्होंने सामाजिक विसंगति पर भी अंकुश लगाया । इस कथा - काव्य की सामाजिक दृष्टि अकवितावादी दृष्टि के अनुकूल है -

"सुख के विरोध में बनाये गये ये सामाजिक नियम
ये संहिताएँ
यह प्राणघातक प्रणाली
इनको मैं ठोकर मार सकती हूँ दिनेश
यदि तुम सहारा दो ।"[1]

कुन्ती के इस कथन से बच्चे पर स्त्री-पुरुष के समान अधिकार की सूचना देना कवि का लक्ष्य रहा है ।

अकविता की आक्रोशी मुद्रा सुविदित तथ्य है । "इतिहासहंता" की कविताएँ निषेध तथा विरोध को सर्वत्र प्रश्रय देती हैं । "डूबते इतिहास का गवाह" की कविताएँ इसकी जगह काफी सहजता का परिचय देती हैं । इस कविता-संग्रह का प्रकाशन सन् 1980 में हुआ । आक्रोश की प्रखरता की जगह

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 16.

संयम तथा सकारात्मकता की ओर उन्मुख कवि की मानसिकता की झलक इस संग्रह की कविताओं की निजी विशेषता है ।

अकविता के दौर की समाप्ति के पश्चात् जगदीश चतुर्वेदी ने जिन कविताओं का सृजन किया, वह "नए मसीहा का जन्म" में संकलित हैं । इसका प्रकाशन सन् 1988 में हुआ । अपनी अनुभूति की निष्ठात्मक अभिव्यक्ति इस संकलन की कविताओं की विशेषता है । अपनी सही मिट्टी की ओर वापस जाने की प्रवृत्ति और अपने को पूरी तरह से नैसर्गिक बना पाने की चेष्टा, इस संकलन की कविताओं की अलग पहचान कराती है । "मालवे का संगीत" इस संकलन की एक लंबी कविता है, जो मालवे के प्रति कवि की निकटता को स्पष्ट करती है -

"उसे नहीं पता इस मिट्टी से,
इन आवाज़ों से,
इस आकर्षण से
उसका कितना गहरा, आत्मीय और सजीव नाता है ।"[1]

जीवन के प्रति आस्था, मूल्यों तथा संबन्धों के प्रति विशेष लगाव आदि इस समय की कविता में दृष्टिगोचर है ।

"कितना अर्थपूर्ण है
अतीत की रेखाओं को कोई नया अर्थ देना
विस्मृति के घने आवरण को चीरकर
सम्बन्धों का नया आकाश तलाशना ।"[2]

---

1. नये मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 51.
2. वही - पृ. 18.

अकविता से इतर इस संकलन की कविताएँ सकारात्मकता के काफी निकट हैं । अपने समय की विद्रूपता को वाणी देने के लिए अकविता की आक्रोशी मुद्रा आवश्यक थी । फिर समकालीन कविता के दौर में इसके बदले कवि ने सकारात्मक मूल्यों को महत्व दिया और समय के साथ अपने सरोकार का परिचय भी दिया ।

जगदीश चतुर्वेदी की लंबी कविता "इतिहास के अन्धेरे में वसंत की तलाश" प्रकाशित हुई है । 1994 में प्रकाशित नागेश्वर लाल और रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित "आखिरी दशक की लंबी कविताएँ -2" में यह कविता संगृहीत है । विश्व युद्ध और विभाजन की त्रासद घटनाएँ कवि को हमेशा मथती रही हैं । यह कविता उनके इस मानसिक मंथन की उपज है । कवि शाश्वत शांति की तलाश कर रहे हैं । "युद्ध के बाद अब एक अमन की तलाश है - यह तलाश मात्र मृगतृष्णा है या कभी साकार होगी इसी का उत्खनन इस कविता में करने का प्रयास है ।"[1] प्रतीक्षा एक अनवरत प्रक्रिया है । अमन की तलाश और उसकी आशा कवि की आस्था का परिचय देती है -

"उसने अपनी चेतना में नया रंग भरना चाहा
उसने आत्मविश्वास में एक नई ऊर्जा पैदा करनी चाही
और अपनी शक्ति और लिबास बदलकर
निकल पड़ा
फिर से पाने चिनाब का नीला जल
प्यार के किस्से
और वे लोग
जो उसकी ज़िन्दगी में सुगंध भर दें ।

---

1. आखिरी दशक की लंबी कविताएँ -2, सं. नागेश्वर लाल, रमणिका गुप्ता, पृ. 146.

वह अपनी अंतिम यात्रा पर चल पड़ा
पाने के लिए एक ऐसा नगर
जहां किलकते बच्चे हों
चेहरों पर बसन्त हों
नदियों में विचरती रंग-बिरंगी मछलियां हों
और तट पर अमन के गीत गाते हों
मछुआरे तन्मय, आत्मलीन ।"[1]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अकवितावादी दौर के पश्चात् जगदीश चतुर्वेदी ने अपनी नई कविता-यात्रा शुरू की है । इन परवर्ती कविताओं में मानवीयता की खोज का स्वर अधिक बुलन्द है ।

कहानी-संग्रह

जगदीश चतुर्वेदी मूलत: कवि है । परन्तु कहानी के क्षेत्र में भी उनका योगदान है । अब तक उनके नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हैं । प्रत्येक संकलन का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकरण में स्पृहणीय लगता है ।

जगदीश चतुर्वेदी का पहला कहानी संकलन है - "जीवन का संघर्ष" । इसका प्रकाशन सन् 1954 में हुआ । इसमें नौ कहानियाँ संकलित हैं । उनका दूसरा कहानी संग्रह "अन्तराल के दो छोर" सन् 1960 में प्रकाशित किया

---

1. आखिरी दशक की लंबी कविताएँ-2, सं. नागेश्वर लाल, रमणिका गुप्ता, पृ. 19.

गया । "निहंग" का प्रकाशन सन् 1973 में हुआ । इसमें सोलह कहानियाँ संकलित हैं । जगदीश चतुर्वेदी की सत्रह कहानियों का संकलन "अन्धेरे का आदमी" सन् 1978 में प्रकाशित हुआ । "चर्चित कहानियां" जगदीश चतुर्वेदी की पच्चीस कहानियों का संकलन है । इसका प्रकाशन सन 1981 में हुआ । "विवर्त" में सत्रह कहानियां हैं । यह संकलन भी 1981 में प्रकाशित हुआ । सन् 1992 में प्रकाशित "प्रेम संबंधों की कहानियाँ" काफी चर्चित संकलन है । इसमें तीस कहानियां संकलित हैं । "आदिम गंध" जगदीश चतुर्वेदी की तैंतालीस कहानियों का संकलन है । इसका प्रकाशन सन 1995 में हुआ । जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों का एक संकलन हाल ही में प्रकाशित हुआ है । सन् 1995 में प्रकाशित इस संकलन का नाम है -"डालिया का फूल" । इसमें बाईस कहानियां हैं ।

जगदीश चतुर्वेदी ने अपने जीवन और समाज में जो देखा, भोगा, उसका सच्चा आकलन अपनी कहानियों में किया है । प्रेम-संबंधों को लेकर उन्होंने जिन कहानियों की रचना की है, काफी प्रामाणिक हैं । ओढ़ी हुई छद्म नैतिकता का पर्दाफाश उनकी कहानियों की विशेषता है । "प्रेम संबंधों की कहानियाँ" संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा है -"आज बीसवीं सदी के अंतिम कगार पर खड़े होकर हमें यह सोचना होगा कि यौन-संबंधों में पारंपरिक भारतीय मान्यताओं के विपरीत पर्याप्त परिवर्तन आ गए है । उनका वर्णन या उन स्थितियों से साक्षात्कार निषिद्ध नहीं माना जाना चाहिए । इस संकलन में हमारा परिचय मध्यवर्ग के ऐसे चरित्रों से होता है, जो यौनेच्छा

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 7.

से पीडित हैं साथ ही पारंपरिक और आधुनिक विचारधाराओं के बीच संतुलन स्थापित करने में असफल हैं । "आदिम गंध" की कहानियों में जीवंतता का संस्पर्श मिलता है । जगदीश चतुर्वेदी का आत्मकथ्य है - "ये तमाम अनुभव कहीं मेरे अपने हैं, कहीं मेरे नितांत आत्मीयों के और कहीं सुने हुए भी, किन्तु इनमें यथार्थ की गंध है । × × × मुझे लगता रहा कि उच्च-मध्यम वर्ग की ज़िन्दगी पर हिन्दी में बहुत कम कहानियां लिखी गई हैं । मैं ने जब इस वर्ग को समीप से देखा तो उसके खोखलेपन, उसकी कसक, और उसके मिथ्या अहम् के परखचे उधेड़ने की तीव्र आकांक्षा जाग उठी । ये तमाम चरित्र इस उत्खनन के परिणाम है ।"[1] इस तरह जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ जीवन की प्रामाणिक तस्वीर हैं ।

नाटक

जगदीश चतुर्वेदी के दो नाटक प्रकाशित हैं -"कपास के फूल" और "पीली दोपहर" ।

"कपास के फूल" छः अंकोंवाला एक लघु नाटक है । इसका प्रकाशन सन् 1960 में हुआ । यह एक सोद्देश्य नाटक है । वसंत-ऋतु के आगमन का नाच-गीत से स्वागत करनेवाली ग्रामीण जनता के दृश्य नाटक के प्रारंभ में ही होते हैं । मकई के खेत में अलाव जलाकर लोग नृत्य कर रहे हैं । रामू इस नाटक का नायक है, उसके मित्र हल्लू, चिकुरिया और गाँव के शुभ चिन्तक सरदार, नाटक की नायिका केसर, उसकी सहेलियाँ धनिया

---

1. आदिम गंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 14.

और रामप्यारी सब नाच-गान में भागीदार हैं । इस नाटक में ग्रामोद्योगों के प्रसार एवं श्रम की महत्ता पर अधिक ज़ोर दिया गया है । रामू जब अपनी बेकारी की बात कहता है तो सरदार उसे निर्माण के कार्यों में हाथ बँटाने का उपदेश देता है । शिक्षा की अनिवार्यता और महत्ता की ओर भी सरदार संकेत करता है -"पढ़कर मन जागेगा रामू, मन को जगाकर ही ज़िन्दगी की कीमत पहचानोगे ।"[1] जाति और कर्म के बीच जो फासला है, उसे मिटाने की आवश्यकता पर इस नाटक में बल दिया गया है । श्रम को भगवान मानकर जाति-पाँति के भेद-भाव को मिटाने का आह्वान करनेवाला सरदार नाटककार के उद्देश्य का स्पष्ट प्रमाण है ।

श्रम, शिक्षा आदि के महत्त्व की उद्घोषणा करने के साथ-साथ नाटक बापू के राम-राज्य की स्थापना की आशा भी रखता है । सरदार के शब्दों में -"मैं तो चाहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति आत्म निर्भर हो जाये । उनमें बेरोज़गारी समाप्त हो जाये । फसल कट जाने के बाद वे कौड़ी न खेलते रहें, वे अपने गाँव के लिये, अपने लिये कुछ करें । उनमें स्वदेशी भावनाएँ आयें । हाथ का कता सूत पहनें, ओढ़ें, उस अमृत को जो बापू ने हमें सौंपा है, हम विश्वव्यापी कर दें । वेद मंत्रों के स्वर से चरखे घर-घर में गूँज उठें ।"[2] स्वदेश प्रेम, स्वदेशी चीज़ों के प्रति विशेष रुचि, ऊँच-नीच के भेद-भाव से मुक्त होने की चाह, आदि भी इस नाटक की विशेषता है । इस नाटक के सभी पात्र गाँधीजी के विचारों के वाहक सिद्ध होते हैं ।

---

1. कपास के फूल, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 24.
2. वही - पृ. 35.

गाँव के नौजवान निर्माण कार्य में सक्रिय भाग ले रहे हैं । सड़क, पाठशाला, पंचायत घर, चरखा-केन्द्र आदि का निर्माण इस तरह होता है । कला की मूल्यवत्ता से सभी ग्रामवासी परिचित हैं । अतः वे कलात्मक भावनाओं के पोषण के कार्य-कलापों में भाग लेते हैं । होली जैसे विशेष अवसरों का स्वागत पूरी दिलचस्पी से वे करते हैं । यह उनकी कलात्मक रुचि के साथ साथ देश-प्रेम की भावना को भी प्रकट करता है । रामू का कहना है - "अंग्रेज़ी हुकूमत का व्यसन हमें पसन्द नहीं है । उन गन्दे नृत्यों से मन में तीखी घृणा जागती है, पर पुराने रासों में हम आज भी मग्न रहते हैं । उसमें एक सात्विकता है, सलज्जता है, अपनत्व है ।"[1]

केसरिया के पिता ज़मीन्दार अपनी पुत्री की शादी रामू के साथ तय कर लेना चाहते हैं । वे धन की अपेक्षा शील और आत्म-निर्भरता को महत्व देते हैं । रामू गाँव के शीलवान् और आत्मनिर्भर व्यक्ति है । इसलिए रामू को अपने जामात के रूप में स्वीकार करने में वे गर्व का अनुभव करते हैं ।

"कपास के फूल" बिलकुल ही सोद्देश्य आदर्शात्मक लघु नाटक है । सोद्देश्य नाटक की सभी सीमाएँ इस नाटक की भी हैं ।

अभिनेयता को इस नाटक में उतना महत्व नहीं दिया गया है, जितना उद्देश्य को । इसे अनभिनेय नाटकों की कोटि में रखा नहीं जा

---

1. कपास के फूल, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 45.

सकता है । अनभिनेय दृश्य इसमें नहीं के बराबर है । ध्वनि-व्यवस्था के सहारे विवाह के अवसर के लोकगीत और शहनाई के स्वर अधिक सहज हो गया है । रंगमंच की नई-नई संभावनाओं को ध्यान में रखकर ही आधुनिक नाटक लिखे जाते हैं । जगदीश चतुर्वेदी ने रंगमंचीयता को ध्यान में रखकर इसमें कोई नया प्रयोग नहीं किया, परन्तु रंगमंच को नगण्य नहीं माना । नाटककार का वक्तव्य है -"नाटक अभिनय के लिए अत्यंत उपयुक्त है । इसके पात्रों का विकास रंगमंचीय कला को पूरी तरह दृष्टि में रखकर किया गया है ।"[1]

"पीली दोपहर" का प्रकाशन सन् 1978 में हुआ । यह तीन अंकोंवाला एक नाटक है । इसका कथ्य मार्मिक है । वास्तव में यह एक मूल्यान्वेषी नाटक है । दर्शन के प्राध्यापक डॉ. सुधांशु, उसकी पत्नी रेखा और मिस सूद (कान्ता) को आधार बनाकर इस नाटक की कथा आगे बढ़ती है । अपनी पत्नी की बीमारी से डॉ. सुधांशु मन ही मन दुखी है । उसकी पत्नी रेखा तपेदिक का मरीज़ है । उनके दो बच्चे हैं । रेखा को सेनिटोरियम ले जाता है । वहाँ की नर्स मिस सूद डॉ. सुधांशु से प्रभावित हो जाती है । रेखा की बीमारी की बात जानकर उसके मन में सुधांशु के प्रति सहानुभूति बढ़ जाती है । डॉ. सुधांशु अपनी पत्नी की बुरी हालत से बहुत बेचैनी का अनुभव करता है । वह रेखा को स्वस्थ देखना चाहता है । अपनी बेचैनी के क्षणों में उसे कान्ता से दिलासा मिलती है । कान्ता डा. सुधांशु को अपने मन की बात बता देती है । लेकिन सुधांशु पत्नी का हमेशा ध्यान रखता है । वह कान्ता के मन की बात टाल देता है । इतने में रेखा की मृत्यु होती है ।

---

1. कपास के फूल, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 11.

कान्ता दु:खी होती है, साथ ही उसे अपना भाग्य समझती है । पत्नी की मृत्यु डा. सुधांशु को पागल सा बना देती है । कान्ता उसकी शुश्रूषा करती है ।

डॉ. सुधांशु -"अच्छा, एक बात बताओ कान्ता, तुम मेरी इतनी शुश्रूषा क्यों करती हो ? नहीं, तुमको मैं अपना नहीं सकूँगा । मैं एक असफल पति हूँ । अब दुबारा दूसरी गलती नहीं करूँगा । मुझे एक अलसायी पीली-दोपहर सा यहीं रास्ते में पड़ा रहने दो । जाओ, चली जाओ यहाँ से ।"

मिस सूद :-(चिल्लाकर) मैं कहती हूँ, तुम सो जाओ सुधी ।

सुधांशु :- क्या मैं बच्चा हूँ जो सो जाऊँ कान्ता ? जब सीने में नश्तर चल रहे हों, तो नींद नहीं आती । कह नहीं सकता कब तक नींद नहीं आएगी । (ठंडी सांस भरता है) अच्छा, तुम एक काम करो कान्ता । मुझे एक टैक्सी मंगा दो, मैं इसी ट्रेन में वापिस जाना चाहता हूँ ।

× × × × ×

मिस सूद :- (मंच पर अकेली रह जाती है) जाओ सुधी । मैं तुम्हें रोकनेवाली कौन हूँ । रेखा देवी का प्यार तुम्हें पागल न रखकर आदमी बना दे तो मैं तुमसे दूर रहकर भी खुश रहूँगी ।"

डॉ. सुधांशु के मानसिक संघर्ष को नाटक का कथ्य बनाया गया है । विषयवस्तु की प्रस्तुति की दृष्टि से 'पीली दोपहर' एक सफल नाटक है ।

अभिनेयता के संदर्भ में यह नाटक सफल निर्देशन की अपेक्षा रखता है । इस नाटक में प्रमुख रूप से तीन पात्र हैं । संवाद पात्रों के मानसिक संघर्ष को उभारने में बहुत सहायक है । "पीली दोपहर" को अभिनेय

---

1. समकालीन लघु नाटक, सं. विष्णु प्रभाकर व सुरेन्द्र तिवारी, पृ. 72.

नाटकों की कोटि में रखना उचित है । इसमें मंचीय संभावनाएँ ज़्यादा हैं । नाटककार, निर्देशक, अभिनेता के साथ ही दर्शक के संयोग से ही नाटक की असली सफलता होती है ।

यह सूचित करना बहुत ही ज़रूरी है कि जगदीश चतुर्वेदी के ये दो नाटक मंचन की दृष्टि से सफल नहीं निकले । नाटक या मंच की चर्चाओं में उनके नाटक आए भी नहीं हैं । अत: उनका नाटककार-पक्ष अत्यधिक दुर्बल ही कहा जा सकता है ।

आलोचना

सफल रचनाकार एक सफल आलोचक भी होता है । जगदीश चतुर्वेदी के आलोचनात्मक लेखों का संग्रह है "दस्तावेज़" । इसका प्रकाशन सन् 1980 में हुआ । यह रचना उनके प्रखर चिन्तन और तटस्थ दृष्टिकोण का परिचायक है । इसमें 21 लेख और अकविता संबंधी एक साक्षात्कार भी है ।

साहित्य, राजनीति, प्रतिबद्धता, आलोचक का दायित्व आदि से संबंधित उनका विचार इसमें मिलता है । उनके अनुसार साहित्य मनुष्य की भलाई को ध्यान में रखकर लिखा जाता है । अत: साहित्यकार को चाहिए कि वह प्रत्येक मानव विरोधी कार्य का विरोध करें । इसके लिए उसे स्वतंत्र होने की आवश्यकता है । उसे किसी दल विशेष या विचारधारा से प्रतिबद्ध नहीं होना है । उनका कहना है "श्रेष्ठ साहित्य केवल राजनैतिक

दबाव या प्रतिबद्धता से नहीं लिखा जा सकता ।"[1] प्रतिबद्धता व्यक्ति को कुंठित कर देनेवाली एक नागफाँस है । आज के साहित्यकार विद्रोही है, वह प्रतिबत्रता से मुक्त होना चाहता है । "वह अगर किसी से प्रतिबद्ध है तो अपने आन्तरिक संघर्ष से, अपनी गुत्थियों से, अपने अव्यवस्थित और बेनकाब व्यक्तित्व से ।"[2] यहाँ प्रतिबद्धता का प्रयोग पक्षधरता और प्रचारात्मकता के अर्थ में हुआ है ।

रचना के मूल्यांकन संबंधी उनका विचार है -"हमें लेखक या कवि के परिवेश के अनुसार ही कृति को मूल्यांकित करना होगा, अन्यथा हमारा बहुत सा आधुनिक साहित्य हमें गफलत में ही आयातित नज़र आने लगेगा ।"[3] समीक्षक को आवश्यक है कि वह कवि के आन्तरिक संघर्ष को पहचानें । सच्चे लेखक को अपनी कृति की समीक्षा करने की शक्ति होनी चाहिए ।

"अकविता" से संबंधित कई लेख इस पुस्तक में हैं । कवि का लक्ष्य अकविता से जुडी हुई भ्रामक धारणाओं को दूर करना रहा है - "एंटी कविता और अभिनव काव्य" लेख में वे लिखते हैं -"जहाँ अज्ञेय की रुचि पुरानी पड़ जाती है और सप्तकों के अधिकांश कवि चुक गए या पिष्ट-पेषण करते दिखाई देते हैं, वहीं से इस काव्य का श्रीगणेश होता है ।"[4] वास्तव में कविता के क्षेत्र में आये ठहराव को गति देने का कार्य अकविता के कवियों ने किया है ।

---

1. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 13.
2. वही, पृ. 27.
3. वही पृ. 12.
4. वही, पृ. 29.

इसमें आधुनिक जीवन के विरोधाभासों को नया संदर्भ मिलता है । साथ ही व्यक्ति के अस्तित्व की पूर्ण प्रतिष्ठा है । अकविता में परिवर्तित सौंदर्यबोध और बौद्धिकता का समावेश है । आज की कविता व्यक्ति की अपनी अस्मिता की सक्रिय खोज का परिणाम है । व्यक्ति अपनी पूरी सच्चाई के साथ, बिना किसी दुराव-छिपाव के इस कविता में उभरता है । अकविता का जीवन के साथ निकट का संबंध है । अकविता में जिस विसंगत -परिवेश का अंकन हुआ है, उसका स्पष्टीकरण देते हुए जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं -"ये तमाम विसंगतियाँ जिन्हें हम काव्य में साक्षात् देख रहे हैं, उस तीसरे महायुद्ध की पीठिका की झलक भर है, जिसे तमाम विश्व के बुद्धिजीवी अनुभव कर रहे हैं ।"[1] अकविता जीवन की हर विसंगति को सहज मानती है । "अकविता का कवि दुर्घटना और प्राप्ति, हत्या और अभिसार सभी बातों को एक सहज प्रक्रिया मानता है ।"[2]

कविता पर लिखे गये अनेक लेख दस्तावेज़ में संकलित हैं । "नई कविता उपलब्धि और संभावनाएँ" शीर्षक लेख इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है । "दार्शनिक या आध्यात्मिक मुद्रा, जो छायावादी काव्य की विशेषता थी, उसे इस नई कविताओं ने उखाड़ फेंका और उसमें निहित गंभीरता को भी काव्य के लिए आवश्यक नहीं समझा ।"[3] अपने परिचित परिवेश की पूरी तल्लीनता से प्रस्तुति नए कवियों का उद्देश्य रहा है । यथार्थ का समावेश नयी कविता की पहचान है । नई कविता की उपलब्धियाँ निर्विवाद है, पर कुछ नए कवि अपने को दुहराने लगे और अनुभूति-विहीन कविता की रचना करने लगे । कविता के क्षेत्र में आए हुए गतिरोध के कारण अकविता का उदय हुआ ।

---

1. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 35.
2. वही, पृ. 37.
3. वही, पृ. 27.

"हिन्दी साहित्य 1961" शीर्षक लेख में वे प्रत्येक साहित्यिक विधा का मूल्यांकन करते हैं । कविता संबंधी उनके विचार गंभीर हैं । कुंवर नारायण का कविता संग्रह "परिवेश हम तुम" की कविताओं को वे सहज और सरल मानते हैं । इसमें जीवन की अत्यंत सहज अनुभूति है । गिरिजाकुमार माथुर का काव्य-संकलन "शिला-पंख चमकीले" की कविताएँ शिल्प की दृष्टि से सफल हैं । दिनकर कृत 'उर्वशी' पर विचार करते हुए वे लिखते हैं -"वस्तुतः इसमें सौंदर्य की अगाध पिपासा, स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति सार्थक रूप में व्यक्त हुई है ।"[1] काव्य सौंदर्य की दृष्टि से दिनकर की काव्य कृतियों में उर्वशी काफी श्रेष्ठ है । इसके अलावा पत्रिकाओं में प्रकाशित अनेक कविताओं पर उन्होंने अपना विचार प्रकट किया है । उनके अनुसार -"आज का कवि अपने दायित्व के प्रति पिछली पीढ़ी से अधिक जागरूक है, सचेत है ।"[2] इसके अलावा सन् 1962 में प्रकाशित कविता-संग्रहों का विश्लेषण भी इस ग्रंथ में हुआ है ।

बच्चन का कविता संग्रह "चार खेमे, चौंसठ खूँटे" पढ़कर जगदीश चतुर्वेदी काव्यगत ईमानदारी और लेखक की सच्चाई का अनुभव करते हैं । शिल्प की दृष्टि से भी इस संग्रह की कविताएँ सफल हैं ।

नागार्जुन की कविताओं का संग्रह "प्यासी पथराई आँखें" पूर्ण रूप से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता । फिर भी इसमें कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं, जो सहज है साथ ही जीवन की विशिष्टता को अंकित करती हैं ।

---

1. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 57.
2. वही, पृ. 60.

डॉ. प्रभाकर माचवे की कविताओं की व्यंग्यात्मकता पर जगदीश चतुर्वेदी ने विचार किया है । "तेल की पकौड़ियाँ" की कविताओं के संबंध में उनका विचार है -"माचवे जी की इन व्यंग्य कविताओं में सहज अभिव्यक्ति तथा सहज संप्रेषण दिखाई देता है ।"[1]

अजित कुमार की कविताओं का संकलन "नीम की टहनी" कवि की सहज अनुभूति की अभिव्यक्ति का सफल प्रयास है । रामदरश मिश्र की कविताओं का संकलन "बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ" नाम से प्रकाशित हैं । इसकी कविताएँ प्रेम-विषयक हैं । जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं -"पुस्तक का नामकरण ही बड़ा छायावादी मालूम देता है ।"[2] लेकिन कुछ कविताएँ आधुनिक दृष्टिकोण का परिचय देती हैं ।

वर्तमान समाज-व्यवस्था के प्रति आक्रोश दिनकर सोनवलकर की कविताओं का संग्रह "अंकुर की कृतज्ञता" की खासियत है । उनकी कविताएँ अपने अनावश्यक विस्तार के कारण काव्यात्मकता से हटती दिखाई देती हैं । व्यंग्यात्मकता के कारण उनकी कविताओं का गहरा असर पड़ता है ।

"मुक्तिबोध का काव्य और रचनात्मक चिंतन" जगदीश चतुर्वेदी की समीक्षात्मक दृष्टि की सही झांकी देनेवाला लेख है । वास्तव में मुक्तिबोध

---

1. दस्तावेज, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 73.
2. वही, पृ. 75.

ने कविता को प्रयोग की वस्तु न बनाकर उसे सही अर्थों में लिया । उन्होंने "अपने जीवन को विविध प्रयोगों की कसौटी पर तराश कर काव्यगत सत्य का निरूपण किया ।"[1] मुक्तिबोध अपने युग के आगे का कवि है । ऐसे कवि ही नये काव्योन्मेष को गति तथा जीवन देने में सफल हो जाता है ।

मुक्तिबोध की भाँति निराला के रचना-व्यक्तित्व ने भी जगदीश चतुर्वेदी को प्रभावित किया है । "निराला की बादल संबंधी कविताएँ" निराला की काव्य-कुशलता का परिचय देनेवाला लेख है । बादल निराला की कई कविताओं का विषय हैं । उनके प्रसंगानुकूल शब्द-प्रयोग ने भी जगदीश चतुर्वेदी को प्रभावित किया है । "भाव और परिस्थिति के अनुरूप शब्द-योजना की दृष्टि से "बादल राग" हिन्दी की अन्यतम उपलब्धि है ।"[2]

कहानी का अध्ययन प्रस्तुत करनेवाले कई लेख इस समीक्षात्मक ग्रंथ में हैं । "समसामयिक हिन्दी कहानी में आधुनिक तत्व" शीर्षक लेख में वे कहते हैं कि अनुभव का अभाव आज की कहानी की सबसे बड़ी समस्या है । कहानी व्यक्ति का आत्मप्रदर्शन है । "राजनीतिक मान्यताओं के सायास प्रयत्न जब किसी कथाकृति के निर्माण में किये जाते हैं, वह कहानी नहीं, नारा रह जाती है, कहानी की लाश रह जाती है ।"[3] जीवन के हर अंतरंग क्षणों की अभिव्यक्ति कहानी में मिलती है ।

---

1. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 48.
2. वही, पृ. 55.
3. वही. पृ. 85.

वे अज्ञेय की गद्य-शैली में एक संयम, लेखन की गरिमा तथा अभिव्यक्ति की सार्थकता अनुभव करते हैं । मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय आदि की कहानियों की चर्चा करते हुए वे मानते हैं कि विषय, शिल्प तथा रचना-कौशल की दृष्टि से रघुवीर सहाय की कहानी सही अर्थों में आधुनिक हैं ।

"कथा कृतियों का मूल्यांकन" शीर्षक लेख में जगदीश चतुर्वेदी का विचार है कि हिन्दी कथा साहित्य को अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ अश्क, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुंवर नारायण आदि ने नया उन्मेष प्रदान किया है ।

नरेश मेहता का कहानी-संग्रह "तथापि" पर विचार करते हुए उनकी स्वीकृति है कि अभिव्यक्तिगत बौद्धिकता नरेश मेहता की भाषा की एक कमी है । राजेन्द्र यादव की अधिकांश कहानियाँ अति-विस्तार से युक्त हैं और किस्सागोई का परिचय देनेवाली हैं । रमेश बक्षी की कहानियों का संग्रह "मेज़ पर टिकी हुई कुहनियाँ" शैली की दृष्टि से सुथरी तथा प्रांजल है । लेकिन एक ही अनुभूति से संश्लिष्ट होने के कारण एकरसता का परिचय देता है ।

कमलेश्वर की कहानियों का संग्रह "खोई हुई दिशाएँ" महानगर के जीवन को सहजता से अभिव्यक्त करने का प्रयास है । फिर भी कस्बे के मोह को पूर्ण रूप से वे त्यागते भी नहीं । यह भावुकता का निशान है । बदलते मानव-मूल्यों की सहज झांकी से युक्त कहानियाँ भी इस संग्रह में हैं ।

रामकुमार का कहानी-संग्रह "एक चेहरा" मध्यवर्गीय युवकों की मानसिकता का प्रक्षेपण करनेवाली कहानियों से युक्त है ।

नव-कथा-लेखन पर चर्चा करते हुए जगदीश चतुर्वेदी कृष्ण बलदेव वैद, मनहर चौहान, प्रयाग शुक्ल, धर्मेन्द्र गुप्त, सुदर्शन चोपड़ा, रामकुमार भ्रमर आदि की कहानियों को लेते हैं । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "सभी देश के, या दूसरे शब्दों में तमाम विश्व के आधुनिक साहित्यकार जीवन के जिस संघर्ष को भोग रहे हैं, वह संघर्ष उसे अपने सामने भी दिखाई दे रहा है और इसीलिए उसका संवेदनात्मक धरातल भी पिछले दशक के कथाकारों से सर्वथा भिन्न, अछूता, तथा अधिक सांकेतिक है ।"[1] "आज की हिन्दी कहानी: रचनात्मक आग्रह और संभावनाएँ" शीर्षक लेख में वे यह सिद्ध करते हैं कि आज की कहानी व्यावसायिकता के शिकंजे में कैद है । व्यावसायिकता के बंधन से कथाकार मुक्त हो जाय तो कथा साहित्य के इतिहास में कुछ नये मान प्रतिफलित कर सकते हैं ।

"कहानी का भविष्य बोल्ड और आत्मपरक" शीर्षक लेख में बोल्डनेस को जीवन के विभिन्न अनुभवों में से अत्यंत निकट के क्षणों का कलात्मक प्रतिपादन कहते हुए जगदीश चतुर्वेदी आशा करते हैं -"मेरा विश्वास है कि आगामी कुछ वर्षों में हिन्दी कहानी और अधिक बौद्धिक तथा बोल्ड और आत्मपरक हो जाएगी ।"[2] उनके अनुसार सन् 1961 के कथा साहित्य अन्य विधाओं की तुलना में अधिक समृद्ध है । मोहन राकेश का "अंधेरे बन्द कमरे" श्रेष्ठ उपन्यास है । अज्ञेय कृत "अपने अपने अजनबी" को वे हिन्दी के प्रथम अस्तित्ववादी उपन्यास मानते हैं ।

---

1. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 97.
2. वही, पृ. 105.

नाटक साहित्य पर विचार करते हुए उनकी मान्यता है कि रंगमंच के प्रति विशेष रुचि रखनेवाले नाटककारों की बढ़ती हुई संख्या इस युग की विशेषता है ।

"लघु पत्रिकाओं का दायित्व" पर भी वे विचार करते हैं । साहित्य को गति देने की शक्ति लघु पत्रिकाओं को है । सृजनात्मक धरातल पर आये हुए परिवर्तनों की स्पष्ट झांकी लघु पत्रिकाओं में मिलती है । ये वास्तव में तमाम भारतीय साहित्य की आपसी निकटता को बढ़ावा देती हैं ।

"अकविता कई प्रश्न चिह्नों के बीच" अकविता-संबंधी साक्षात्कार है । अकविता से संबंधित उनकी प्रतिक्रिया इस बातचीत के दौरान प्रकट हुई है ।

जगदीश चतुर्वेदी का "दस्तावेज़" अपने समय को आकलित करने का प्रामाणिक प्रयास है । उनकी आलोचकीय प्रतिभा का यह एक दस्तावेज़ भी है ।

अनुवाद

जगदीश चतुर्वेदी सृजनशील रचनाकार के साथ-साथ सफल अनुवादक भी हैं । विभिन्न देशों के रचनाकारों की रचना-दृष्टि से परिचित होने का अवसर अनुवाद प्रदान करता है । आठवें दशक में समाजवादी देशों की

कविता को अनुवाद के माध्यम से समझने की कोशिश हिन्दी कवियों ने की । इस कोशिश के फलस्वरूप जगदीश चतुर्वेदी ने बल्गारियाई, फिनलैंड तथा इतालवी कविताओं का अनुवाद किया है ।

"महाप्रस्थान" बल्गारियाई कवि ख्रिस्तो बोतेव की 17 कविताओं का अनुवाद है । इसका प्रकाशन 1978 में हुआ । क्रान्तिकारी ख्रिस्तो बोतेव आधुनिक बल्गारियाई कविता का जनक हैं । 28 वर्ष की आयु में बोतेव शहीद हुए । उन्होंने बीस गीतों की रचना की हैं । "ये बीस कविताएँ उनके रक्त से लिखी रचनाएँ हैं, जिसमें युवा आक्रोश, मानवीय संवेदन की पराकाष्ठा और वैयक्तिक सुख-दुःख को असीम मानवीयता में परिवर्तित करने की क्षमता है ।"[1] उनकी कविताएँ अपने देश के लिए समर्पित रहीं और परवर्ती कवियों ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की । समकालीन युवा कवियों की तरह उनकी कविता में उद्दाम वेग, आकर्षण तथा नवीनता है ।

बोतेव और जगदीश चतुर्वेदी की कविता विद्रोह की कविता है । बोतेव का आक्रोश तुर्की शासकों के प्रति है । देशप्रेम और देश की आज़ादी उनका लक्ष्य रहा । जगदीश चतुर्वेदी मौजूदा व्यवस्था के खोखलेपन के प्रति आक्रोश प्रकट करते हैं । उनकी स्वीकृति है -"मैं उनकी कविताओं को किसी समकालीन बल्गारियाई कवि की रचनाओं की तरह ही तल्लीनता से अनूदित करता रहा । मुझे उनकी रचनाओं के अनुवाद करते समय भारत के क्रान्तिकारी बिस्मिल और भगतसिंह याद आते रहे । मुझे याद आते रहे कवि

---

1. महाप्रस्थान, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 9.

माओ, काजी नज़रूल इस्लाम और पाब्लो नेरूदा ।[1] अत: स्पष्ट है कि बोतेव तथा जगदीश चतुर्वेदी की मानसिकता तथा काव्य-ऊर्जा में एक प्रकार की समानता है । जगदीश चतुर्वेदी के इस अनूदित संग्रह को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ है ।

फिनलैंड की कविताओं का संकलन "भूमि जो है नहीं" सन् 1980 में प्रकाशित है । अनो कैलास, ऐनो लीयनो, पोन्तो सारकोस्की की कविताओं का अनुवाद इसमें जगदीश चतुर्वेदी ने किया है ।

1981 में प्रकाशित "इतालवी कविता" लुदोविको, एरिओस्तो मिकेलान्जलो ब्यूनारौत्ती, तुम्मारसो कम्पानिल्ला एवं विन्चेन्ज़ो कार्दारौल्ली की कविताओं का अनुवाद है ।

संपादक

संपादक मात्र संकलनकर्ता नहीं है । उसे युग चेता दृष्टि की ज़रूरत है । ऐसी दृष्टि के धनी संपादक न केवल अपनी पीढ़ी का दिशा-निर्देश करता है, वरन् आनेवाली पीढ़ी का भी संवाहक बनता है । इसप्रकार वह एक भविष्य-द्रष्टा भी है । इस दृष्टि से जगदीश चतुर्वेदी की संपादक-भूमिका महत्वपूर्ण है । कविता, कहानी, तथा पत्रिकाओं का संपादन उनके द्वारा प्रभूत मात्रा में संपन्न हुआ है ।

---

1. महाप्रस्थान, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 10.

कविता-संकलन

हिन्दी कविता के इतिहास में जगदीश चतुर्वेदी द्वारा संपादित "प्रारंभ" का विशेष महत्व है । इसका प्रकाशन सन् 1963 में हुआ । प्रारंभ की कविताएँ नये काव्योन्मेष की सूचना देती हैं । इसमें संकलित कवि हैं - जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश वाजपेयी, नरेन्द्र धीर, राजकमल चौधरी, केशु, ममता अग्रवाल, श्याम परमार, विष्णु चन्द्र शर्मा, श्याम मोहन श्रीवास्तव, मनमोहिनी, रमेश गौड़, राजीव सक्सेना, स्नेहमयी चौधरी और नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी । इसकी भूमिका में जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है -"कविता आज भावुकता की सीमा से हटकर यथार्थ की, बौद्धिकता की सहज अभिव्यक्ति बन गई है । वैयक्तिक जागरूकता ने साहित्यकार के दायित्व, उसके संवेदनात्मक धरातल को एक नई दिशा प्रदान की है ।"[1] वास्तव में इस संकलन की कविताएँ अपने युग की सहज अभिव्यक्ति हैं ।

"विजप" का प्रकाशन सन् 1967 में हुआ । गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी और श्याम परमार की कविताओं का यह संकलन अकविता के कवियों की मानसिकता का उद्घाटन करता है । इसमें संकलित गंगाप्रसाद विमल की कविताएँ आधुनिक युग के संत्रास विसंगति तथा खलनायकत्व को ध्वनित करने वाली, परंपरा से परे अत्याधुनिक परिवर्तित भावबोध से सन्निहित हैं । यंत्रयुग की विभीषिकाओं से त्रस्त, नगर जीवन की विद्रूपताओं से संश्लिष्ट, सामाजिक वर्जनाओं एवं निषेधों से युक्त कविताओं को जगदीश चतुर्वेदी ने इसमें सम्मिलित किया है । श्याम परमार की कविताएँ अमूर्त चित्रों सी प्रभावपूर्ण, नितांत नये शब्द-चित्रों तथा कोलाज़ प्रयोगों से संश्लिष्ट हैं

---

1. प्रारंभ, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 5.

"निषेध" अकविता का मानक संकलन है । इसका प्रकाशन सन् 1972 में हुआ । आक्रोशी कवियों का यह संकलन जगदीश चतुर्वेदी, चन्द्रकांत देवताले, विनय, सौमित्र मोहन, श्याम परमार, रवीन्द्रनाथ त्यागी, परेश, गुद्दा राक्षस, कुमार विकल, रमेश गौड़ तथा सकलदीप सिंह की कविताओं की ऊर्जा का परिचायक है । देश की विषम परिस्थिति तथा आज़ादी के बाद युवा पीढ़ी के मोहभंग की प्रखर अभिव्यक्ति इस संकलन की कविताओं में हुई है । निषेध की भूमिका में जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है -"आज का कवि अधिक संवेदनशील, विश्व की तमाम कटुताओं के प्रति अधिक संजीदगी से चिन्तन करने वाला तथा विभिन्न राजनैतिक ऊहापोहों के बीच पिसते हुए अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए अधिक सचेत तथा क्रियाशील है ।"[1] इस संकलन की कविताएँ जीवन के साथ निकटता का परिचय देती हैं ।

"अपना अपना आकाश" राजस्थान के 110 शिक्षक कवियों का संकलन है । इसका प्रकाशन सन् 1982 में हुआ । इसी वर्ष प्रकाशित "कैक्टस और गुलाब" छोटी कविताओं का प्रतिनिधि संकलन है । इसमें संपादक ने नये तथा पुराने कवियों को एकसाथ संकलित करने का कार्य किया है । इसमें संकलित कवि हैं - अजित कुमार, अनामिका, अनुभूति चतुर्वेदी, कमल किशोर गोयनका, कैलाश वाजपेयी, गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, दिविक रमेश, नरेन्द्र धीर, नरेन्द्र मोहन, प्रताप सहगल, ब्रजेन्द्र कुमार, मणिका मोहिनी, मनोहर वंद्योपाध्याय, माधुरी शाह, रवीन्द्रनाथ त्यागी, राजकुमार सैनी, विद्या शर्मा, शशि शर्मा, सुरेन्द्र धींगड़ा, सौमित्र मोहन, स्नेहमयी चौधरी, हरदयाल और हरीश पाठक । इन कविताओं में कवि के अन्तर्मन को

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 11.

आप्लावित एक कौंध थोड़े शब्दों में संश्लिष्टता के साथ प्रकट होती है । भूमिका में संपादक का कथन है -"ये कविताएँ, आज के मनुष्य की यातना, विभीषिका, विसंगति तथा द्वन्द्व को मुखरित करती हैं ।"[1]

"तीसरी दुनिया की कविता" 60 देशों के कवियों की कविताओं का संकलन है । इसका प्रकाशन सन् 1985 में हुआ । 1993 में प्रकाशित कविता-संकलन है "सार्थक कविताओं की तलाश" । पोइट्री सोसाइटी (इण्डिया) ने एक अखिल भारतीय कविता प्रतियोगिता का आयोजन किया । हिन्दी की पहली प्रतियोगिता सन् 1991 में हुई । इसमें अनेक कवियों ने भाग लिया । "सार्थक कविताओं की तलाश" इस प्रतियोगिता में पुरस्कृत तथा निर्णायक मण्डल द्वारा चयन की गई कविताओं का संकलित रूप है । इसके दो खण्ड हैं - पुरस्कृत कविताएँ तथा अनुशंसित कविताएँ । पुरस्कृत कविताएँ हैं - सुरेश शर्मा की "लड़की के आसपास", मोहन राणा की "हमेशा की तरह", जगदीश ज्वलंत की "बगुलों के खिलाफ", हेमेन्द्र चण्डालिया की "पहाड़ के बारे में कोई कुछ नहीं कहता" और जितेन्द्र रामप्रकाश की "अधूरी पेंटिंग का घोड़ा" । अस्सी कवियों की कविताएँ "अनुशंसित कविताएँ" में हैं । "इस संकलन की कविताओं में हिन्दुस्थान की संस्कृति के कई रूप, कई जीवंत प्रसंग, प्रकृति की सुषमा के चित्र तथा आज के मनुष्य की यातना, संताप तथा करुणा के अनेक रंग परिलक्षित होंगे ।"[2]

---

1. कैक्टस और गुलाब, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 6.
2. सार्थक कविताओं की तलाश, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 10.

कहानी-संकलन

सन् 1965 में प्रकाशित "सचेतन कहानियाँ" युवा कहानीकारों का संकलन है । अतुल भरद्वाज, गंगाप्रसाद विमल, महीप सिंह, मनहर चौहान, ममता अग्रवाल, श्याम परमार आदि की कहानियाँ इसमें संकलित हैं । सन् 1976 में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के तत्वावधान में "भारतीय कहानी" का प्रकाशन हुआ । भूमिका में संपादक ने लिखा -"विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यिक रूपों में अत्यंत रोचक एकरूपता मिलती है और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है । महाभारत और रामायण पर आधारित कथाओं की परंपरा प्राय: संपूर्ण देश में मिलती है ।"[1] भारतीय साहित्य की एकता पर बल देने के साथ-साथ जगदीश चतुर्वेदी ने आधुनिक कहानी पर पश्चिम के प्रभाव की बात की है । इसमें चौदह भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ 29 कहानियाँ सम्मिलित हैं ।

पत्रिकाएँ

जगदीश चतुर्वेदी ने साहित्य की अनेक विधाओं की रचनाओं का संपादन किया । साथ ही वे कई पत्रिकाओं के भी संपादक रहे । सन् 1955 में वे "दैनिक भास्कर" के संपादक रहे । 1965 में "अवन्तिका" पत्रिका के संपादक के रूप में उन्होंने काम किया । 1971 में वैज्ञानिक शब्दावली आयोग की पत्रिका "विधा" का संपादन किया । इसका प्रमुख लक्ष्य संसार की महत्वपूर्ण भाषाओं में लिखी जा रही कविता के अतिरिक्त विभिन्न कला-आन्दोलनों को भी प्रकाश में लाना था ।

---

1. भारतीय कहानी, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ.

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से प्रकाशित "भाषा" तथा वार्षिकी के संपादक के रूप में जगदीश चतुर्वेदी का योगदान महत्त्वपूर्ण है । 1961 से लेकर 'भाषा' के संपादकीय विभाग में जगदीश चतुर्वेदी ने काम किया । भाषा पत्रिका के संपादकीय में जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है - भाषा त्रैमासिक का लक्ष्य राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ सभी सहवर्ती भारतीय भाषाओं का सम्यक् अध्ययन एवं प्रसार करना है । चाहे हिन्दी हो या कोई अन्य हिन्दीतर भाषा, उनमें केवल किसी भौगोलिक सीमा में प्रचलित शब्द-भण्डार या जातीय संस्कार मात्र नहीं पाये जाते अपितु अन्य भाषाओं से निरंतर संपर्क या संबंध द्वारा उसकी साहित्यिक गरिमा में वृद्धि होती रहती है ।"[1] भाषा के संपादक के रूप में जगदीश चतुर्वेदी ने सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य से अपने संपर्क का परिचय दिया है । "हिन्दी वार्षिकी" का सन् 1970 से प्रकाशन हुआ । इसका लक्ष्य रहा है - सभी भारतीय भाषाओं की वर्ष भर में हुई प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना । सन् 1978 तक जगदीश चतुर्वेदी वार्षिकी के संपादक रहे । ऐसी एक पत्रिका के संपादक को संपूर्ण भारतीय वाङ्मय की अद्यतन प्रवृत्तियों से सीधा सरोकार आवश्यक है । जगदीश चतुर्वेदी ने संपादक के रूप में अपने सरोकार का परिचय अवश्य दिया है ।

पुरस्कार

जगदीश चतुर्वेदी की कई कृतियाँ अंग्रेज़ी, फ्रेंच, बल्गेरियाई पोलिश और अनेक भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं । उनको कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुके हैं । "इतिहासहन्ता" (कविता संग्रह) पर अखिल भारतीय सूर पुरस्कार, "सूर्यपुत्र" (मिथक काव्य) पर

---

1. भाषा, दिसंबर 1983, सं. जगदीश चतुर्वेदी

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का पुरस्कार तथा 'महाप्रस्थान' (अनूदित काव्य कृति) पर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त हो चुका है । उनको अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए बंबई का प्रियदर्शिनी पुरस्कार तथा हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा सम्मानित किया जा चुका है । बल्गारियाई कविता के हिन्दी अनुवाद के लिए उनको बल्गारियाई लेखक संघ के महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार वैगारोव स्वर्ण पदक से विभूषित किया गया है ।

जगदीश चतुर्वेदी आज के समर्थ कवियों में एक है । उनमें सृजनात्मकता की अदम्य इच्छा है और वह प्राय: नई धरती तलाशती रहती है । अकविता या अकहानी एक विस्फोट रही । कुछ समय तक पुरोधा के बहाने वे उसीमें रमते रहे, प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते रहे । लेकिन उनकी सृजन यात्रा रुकी नहीं । सृजन की पीड़ा यात्री की अनवरत पीड़ा के समान होती है । इसलिए सृजन की यात्रा आगे बढ़ी । अनथकी प्रतिभा और सृजनात्मकता से युक्त जगदीश चतुर्वेदी रचना के मूल्य को सही अन्दाज़ में पहचाननेवाले सर्जक कलाकार हैं ।

अध्याय - दो

अकथिता प्रवृत्तिमूलक अध्ययन

आधुनिक कविता की सामान्य भूमिका

छायावादी कविता की वैयक्तिकता तथा प्रगतिवादी काव्य की सामाजिकता का समन्वित रूप प्रयोगशील नई कविता में सहज हो गया है । "नयी कविता समसामयिक हिन्दी काव्य-धारा की प्राय: सर्वाधिक स्वीकृत अभिधा है । उसने अपनी उदार बाहें फैलाकर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की यथार्थोन्मुखी चेतना को उन्मुक्त हृदय से अपने में समाहित कर लिया ।"[1] नई कविता प्रयोगशील कविता का सहज विकास है । "तारसप्तक के प्रकाशन से हिन्दी की प्रयोगशील कविता का - नयी कविता जिसका परवर्ती विकास है - आरंभ माना जाता है ।"[2] नये कवियों ने कथ्य तथा शिल्प को लेकर नये-नये प्रयोग किये हैं । "नयी कविता अनुभूति और अभिव्यक्ति की नयी व्यवस्था की कविता है ।"[3] नयी कविता में व्यक्ति-चेतना की विवृति है, साथ ही सामाजिक चेतना भी । व्यक्तिवादी चेतना को प्रमुखता देनेवाले कवियों ने व्यक्ति की अतिशय स्वाधीनता पर बल दिया । सामाजिक चेतना के कवियों ने व्यक्ति और समष्टि के समन्वय को महत्त्व दिया । अत: नयी कविता प्रयोगवादी कविता का अगला चरण है । नये कवि आधुनिक भावबोध के कवि हैं । मुक्तिबोध के अनुसार -"नयी कविता की आत्मा है आधुनिक भावबोध ।"[4] आधुनिक मनुष्य का दृष्टिकोण यथार्थोन्मुख है, संवेदनशील है, कल्पना-प्रधान नहीं । "वह यथार्थ संबंधों को ग्रहण कर यथार्थबोध द्वारा संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करता है ।"[5] बौद्धिकता के स्तर पर नए कवियों ने अपनी अनुभूतियों को

---

1. कवितांतर, सं. डॉ. जगदीश गुप्त, पृ. 40.
2. दिशान्तर, सं. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव व डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ. ।
3. नयी कविता, देवराज, पृ. 9.
4. नयी कविता का आत्मसंघर्ष, मुक्तिबोध, पृ. ।।9.
5. वही, पृ. ।।9.

अभिव्यक्ति प्रदान की है । अत: बौद्धिकता नयी कविता की अन्तश्चेतना है । यथार्थ की सही पहचान के लिए यह आवश्यक भी है । "यथार्थवादी दृष्टि प्राय: भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता की प्रतिष्ठा करती है ।"[1] अत: नयी कविता भावुक कम और बौद्धिक अधिक है । यथार्थ की आधार शिला बौद्धिकता को प्रेरित करती है । "यथार्थ जीवन की वह आस्थामय अनुभूति है, जो यह मानती है कि जीवन निस्सार नहीं, जीने के लिए है, उसे जिया जा सकता है, उसे भोगा जा सकता है, उसके साथ मनुष्य के स्तर पर अनुभूतियों को ग्रहण किया जा सकता है और उनसे ओतप्रोत होकर जीवन की व्यापकता में सौंदर्य, रस, आनन्द, बोध-अनुबोध के स्तरों को ग्रहण किया जा सकता है - यही नहीं उन्हें स्वीकार किया जा सकता है ।"[2] नये कवियों ने काव्य की विषयवस्तु के लिए कोई सीमा-रेखा का निर्धारण नहीं किया । सुन्दर तथा असुन्दर उनके काव्य में नये सौंदर्यबोध को उभारने लगे । नये कवि का सौंदर्यबोध यथार्थ को उसकी संपूर्णता में स्वीकारता है । लक्ष्मीकान्त वर्मा का कहना है -"असुन्दर सुन्दर का परिशिष्ट मात्र नहीं है । वह सुन्दर की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है । आज का यथार्थ मात्र उस सौंदर्य पर प्रौढ़ नहीं हो सकता और न जीवित अनुभूति ही दे सकता है, जो जीवन में व्याप्त तिक्तता और असुन्दरता के प्रति मुँह मोड़कर एकांगी एकालाप गाता चलता है ।"[3] इस तरह नयी कविता कथ्य की नयी भंगिमाओं के साथ-साथ शिल्प की दृष्टि से भी नवीनता का परिचय देती है । नये कवियों ने नये-नये बिंब, प्रतीक, मिथक आदि को काफी सहजता से प्रयुक्त किया । बदली हुई मानसिकता की सफल अभिव्यक्ति पुराने शब्दों तथा उपमानों से नहीं हो सकती थी तो नये कवियों ने पुराने शब्दों में नए-नए अर्थ भरने की कोशिश की ।

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नामवर सिंह, पृ. 129.
2. नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ. 103.
3. वही, पृ. 97.

इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नयी कविता ने अपनी कलात्मकता तथा काव्य कुशलता से पाठकों तथा आलोचकों को आकर्षित किया ।

अकविता के प्रादुर्भाव के कारण

नयी कविताओं की उपलब्धियों को हम अनदेखा नहीं करते, परन्तु यह तो सर्वविदित है कि कोई भी काव्य-प्रवृत्ति एक दौर पूरा करने के बाद रूढ़िग्रस्त हो जाती है । नयी कविता के संदर्भ में भी यही बात हुई । छायावाद और नयी कविता पर विचार करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है - "ध्यान में रखिए कि नयी कविता की भी एक रूढ़ि बन गयी है (किसी भी काव्य-रूढ़ि को बनने के लिए बीस-पच्चीस साल बहुत होते हैं) और इस रूढ़ि के अनुरोधों के कारण, अगला विकास भविष्य पर छोड़ दिया गया है ।"[1] स्पष्ट है कि नयी कविता की संभावनाएँ चुक गई थीं । कविता के क्षेत्र में दर्शित इस ठहराव को गति देने का कार्य अकविता के कवियों ने किया । जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं -"सच तो यह है कि जहाँ अज्ञेय की रुचि पुरानी पड़ जाती है और सप्तकों के अधिकांश कवि चुक गए या पिष्टपेषण करते दिखाई देते हैं, वहीं से इस काव्य का श्रीगणेश होता है ।"[2] अकविता कविता के क्षेत्र में एक नए अन्दाज़ का परिचय देती है । श्याम परमार ने लिखा है - "समस्त आरोपों के बावजूद वास्तविकता अब यह है कि "अकविता" शब्द क्रमशः हिन्दी कविता में उभरते हुए नए अन्दाज़ के लिए एक पारिभाषिक शब्द हो चला है । अकविता कविता-विरोधी शब्द नहीं रह गया ।"[3] लेकिन इसे

---

1. नए साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, मुक्तिबोध, पृ. 44.
2. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 29.
3. अकविता और कला संदर्भ, श्याम परमार, पृ. 1.

नए अन्दाज़ की अपेक्षा एक विशिष्ट काव्य रूप मानना विश्वंभरनाथ उपाध्याय उचित मानते हैं -"अकविता को नयी कविता की प्रतिक्रिया में उभरते नवीन काव्य रूपों में एक विशिष्ट काव्य रूप ही कहना चाहिए ।"[1] नयी कविता की रूमानियत और नए कवियों के अभिजात संस्कार के विरुद्ध आवाज़ उठाने का कार्य अकवियों ने किया ।

"प्रारंभ" अकविता का मानक संकलन है । इसका प्रकाशन सन् 1963 में हुआ । इस काव्य-संकलन की कविताओं को "अभिनव काव्य" की संज्ञा दी गई । सन् 1964 में पंजाब विश्वविद्यालय से प्रकाशित काव्य-संकलन "अभिव्यक्ति-एक" में जगदीश चतुर्वेदी ने "एन्टी कविता और अभिनव काव्य" नाम से एक टिप्पणी प्रस्तुत की । "काव्य की पुरातन परंपरा से पृथक् उनकी उपलब्धि को हम "अभिनव काव्य" की संज्ञा दे सकते हैं । उन्हें "एंटी-काव्य" के सार्थवाहकों के रूप में परिगणित किया जा सकता है ।"[2] इस प्रकार "अभिनव काव्य" "एन्टी-काव्य" जैसे शब्दों के प्रयोग से जगदीश चतुर्वेदी ने कविता के क्षेत्र में उभरे हुए नए अन्दाज़ की सूचना दी ।

सन् 1965 में "अकविता" पत्रिका का प्रकाशन हुआ । इसके क्रमशः सात अंक प्रकाशित किये गये । इसके प्रकाशन का उद्देश्य कविता के क्षेत्र के बदलाव की आवश्यकता पर बल देना रहा है । "अकविता" पत्रिका के प्रकाशन से "अकविता" नाम स्थिर हो गया । लेकिन "अकविता" शब्द का

---

1. जलते और उबलते प्रश्न, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 269.

2. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 29.

पहला प्रयोग केदारनाथ सिंह ने किया । उन्होंने धर्मयुग में प्रकाशित अपने एक लेख में नयी कविता के बाद शुरू होनेवाली कविताओं के संदर्भ में लिखा - "इधर की कविताएँ कवितापन खोती जा रही हैं । और एक प्रकार की "नॉन पोयट्री" लिखी जा रही है ।"[1] केदारनाथ सिंह कवितापन खो जाने की बात पर ज़ोर देते हैं । लेकिन अकविता के कवियों ने कविताहीनता से चिंतित होकर यह नाम नहीं दिया । उनकी दृष्टि में "अकविता" नए अन्दाज़ का, नए बदलाव का सूचक शब्द मात्र है । वस्तुत: इसी परिप्रेक्ष्य में अकविता का महत्व स्पष्ट होता है ।

प्रवर्तक कवि तथा अकविता के मानक काव्य-संकलन

अकविता के प्रवर्तन का श्रेय जगदीश चतुर्वेदी को प्राप्त है । अकविता के विकास के इतिहास में जगदीश चतुर्वेदी द्वारा संपादित "प्रारंभ" विशेष उल्लेखनीय है । इस संकलन में जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं के अलावा कैलाश वाजपेयी, नरेन्द्र धीर, राजकमल चौधरी, केशु, ममता अग्रवाल, श्याम परमार, विष्णु चन्द्र शर्मा, श्याम मोहन श्रीवास्तव, मनमोहिनी, रमेश गौड़, राजीव सक्सेना, स्नेहमयी चौधरी और नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी की कविताएँ संकलित हैं ।

"प्रारंभ" का प्रकाशन वास्तव में अकविता की स्थापना की घोषणा है । इसकी भूमिका में जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा -"आधुनिक जीवन से प्राप्त विभिन्न मन:स्थितियों की सहज अभिव्यक्ति इन कविताओं में दिखाई देगी ।

---

1. पूर्वग्रह, जुलाई-अक्तूबर 1980, लेख कविता, अकविता या टोटल फार्म, उदयप्रकाश, पृ. 87.

परंपरावादी मान्यताओं का विरोध आज की बौद्धिक चेतना का ही प्रतिफलन है और इस युवा कवियों में उसके प्रति आक्रोश उनके दायित्व का, उनके सामाजिक यथार्थ के प्रति संवेदनशीलता का ही परिचायक है । ये कवि उस "अभिनव काव्य" के नियन्ता कहे जा सकते हैं जो सहज रूप से विकसित हो रहा है और जिसमें अनेक संभावनाएँ दिखाई देती हैं ।"[1] प्रारंभ के प्रकाशन से अकविता को एक सहज काव्य प्रवृत्ति के रूप में स्वीकृति मिली है ।

गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी तथा श्याम परमार की कविताओं का संकलन "विजप" सन् 1967 में प्रकाशित हुआ, जो अकविता के कवियों की काव्य-मानसिकता से परिचित होने में काफी सहायक सिद्ध हुआ । इसमें संकलित गंगाप्रसाद विमल की कविताएँ आधुनिक युग के संत्रास, विसंगति तथा खलनायकत्व को ध्वनित करनेवाली, परंपरा से परे अत्याधुनिक परिवर्तित भावबोध से समन्वित हैं -

"हम सब खलनायक हैं
इस जीवन त्रासदी नाट्य के,
मृग-तृष्णा के पीछे दौड़ रहे
माध्यम विहीन
पीड़ित मृग हम सब खलनायक ।"[2]

यंत्र-युग की विभीषिकाओं से त्रस्त, नगर जीवन की विद्रूपताओं से संश्लिष्ट, सामाजिक वर्जनाओं एवं निषेधों से उन्मुक्त जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ इस संकलन की अलग पहचान कराती हैं -

---

1. प्रारंभ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 12.
2. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 18.

"मेरी यातना के पंखों में छिपे हैं -
यंत्र युग के सर्प
सर्पों ने तमाम फसलों को मसल डाला है
लोग केंचुओं की तरह मर रहे हैं
और असहाय मुर्गों की तरह दे रहे हैं बाँग ।"[1]

श्याम परमार की कविताएँ अमूर्त चित्रों सी प्रभावपूर्ण, नितान्त नये शब्द-चित्रों तथा कोलॉज़ प्रयोगों से संश्लिष्ट हैं -

"निशानों के नीचे दबे
अर्थ के अकच्छ अकाय में बार-बार विस्फोट होते हैं
और लोहे की किरचों से छिदी आँखों से
रक्त की जगह मरे हुए साँपों के केंचुल गिरते हैं ।"[2]

सातवें दशक के कवियों का महत्वपूर्ण संकलन "निषेध" सन् 1972 में प्रकाशित किया गया, जिसका संपादन जगदीश चतुर्वेदी ने किया । यह आक्रोशी कवियों का संकलन हैं । इसमें परिवेश की भयावहता तथा बदलते मानव मूल्यों को सही संदर्भ में पहचानने की कोशिश की गई है । जगदीश चतुर्वेदी, चन्द्रकांत देवताले, विनय, सौमित्र मोहन, श्याम परमार, रवीन्द्रनाथ त्यागी, परेश, मुद्रा राक्षस, कुमार विकल, रमेश गौड़ तथा सकलदीप सिंह इस संकलन के कवि हैं । भूमिका में जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है -"इनमें से प्रत्येक कवि का अपना विशिष्ट रचना-संसार है । इस अलगाव के बीच यह सहयोगी प्रयास उस तमाम काव्य-प्रक्रिया को समझने का प्रयास भर हैं, जिसने पिछले एक दशक से

---

1. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 48.
2. वही, पृ. 104.

विद्रोह का नया रूप काव्य-संसार को प्रदान किया है ।"[1] अतः इसमें निषेध को एक काव्य-मूल्य के रूप में स्वीकृति मिली है, जो आधुनिकता का प्रमाण है -

"मुझे अब नहीं करना है विश्वास बदलते आकाश पर
रिरियाते ईश्वर पर ।"[2]

अकविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

अस्वीकार की कविता

अकविता के मूल में विद्रोही चेतना है । दरअसल अकविता विद्रोही कविता है । इसकी एक प्रमुख प्रवृत्ति है निषेध या अस्वीकार । जगदीश चतुर्वेदी ने "निषेध" की भूमिका में इसका जिक्र किया है -"आज की कविता अस्वीकृति की, निषेध की अनिवार्यता को सहज मानकर स्वीकार करती है ।"[3] केवल काव्यगत तत्वों का विरोध ही नहीं, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में प्रचलित सभी रूढ़ियाँ अकवियों के लिए अस्वीकार की बात बन गईं । अकविता वास्तव में परिस्थितियों के दबाव की उपज है । अस्वीकार का यह स्वर मात्र अकविता में उभरा है, यह विचार गलत है । नयी कविता में भी अस्वीकृति और विद्रोह का स्वर है । लेकिन वह एक प्रकार की आकांक्षा से युक्त था ।

"साठ के बाद इस स्वर ने और तीखे व्यंग्य तथा विद्रोह का रूप धारण कर लिया है, जीवन की टूटती मूर्तियों के बहुत करीब जाकर उनकी टूटने की तल्खी, व्यथा और उसमें से फूटती अस्वीकृति की उग्रता को पहचाना है ।"[4]

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 15.
2. वही, पृ. 32.
3. वही, पृ. 15.
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 655.

अकविता की नफरत वास्तव में व्यवस्था तथा उसके पारंपरिक मूल्यों से है । व्यवस्था का मूल्य आम आदमी के लिए घातक है तो उसके प्रति अस्वीकृति का रूख अपनाना कोई अतिरंजित बात नहीं । "जिन मूल्यों और आदर्शों की अर्थी से दुहाई दी जा रही थी, वे अपने समूचे खोखलेपन के साथ विघटित हो रहे थे । नेहरू का जादू टूट चुका था । देश आर्थिक संकट का सामना कर रहा था ।"[1] ऐसी परिस्थिति में आशा-आकांक्षाओं का बिखराव अनिवार्य बन गया । "आज़ादी के बाद आम-चुनावों ने जातीयता, सांप्रदायिकता, भाई-भतीजावाद, दलबद्धता आदि बुराइयों को प्रश्रय ही नहीं दिया वरन् सभी परंपरागत मानवीय मूल्यों के हनन और अपराधकर्मियों की प्रतिष्ठा का माहौल भी बना दिया ।"[2] इन सब के प्रति एक प्रकार की प्रतिहिंसा की भावना का उदय हुआ, जो स्वाभाविक था ।

"सन् साठ के पहले कविता में समकालीन परिवेश के प्रति एक ठंडापन मिलता है जबकि इसके विपरीत युवा कवियों द्वारा लिखी गई कविताओं के तेवर गुस्सैल है ।"[3] यह इसलिए है कि "नयी कविता संक्रान्ति-जन्य संत्रास, यातना, टूटन, विधा की अनुभूति की कविता है, जिसमें रह-रहकर सुन्दर अनागत के आने की आशा, स्वयं को अन्धेरे में प्रकाश की तरह जलाकर, फूल की तरह खिलकर अपने को सार्थक तथा अपने द्वारा युग को मूल्यवान बनाने की आस्था कौंध की तरह लिपट-लिपट जाती है ।"[4] इस कारण से नयी कविता

---

1. पूर्वग्रह, जुलाई-अक्तूबर 1980, लेख कविता, अकविता या टोटल फार्म, उदय प्रकाश, पृ. 91.
2. हिन्दी कविता: संवेदना और दृष्टि, राम मनोहर त्रिपाठी, पृ. 157.
3. साठोत्तरी हिन्दी कविता की वस्तु चेतना, डॉ. बादाम सिंह रावत, पृ. 12.
4. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. 182.

में जो निषेध मिलता है, वह उतना प्रबल नहीं । लेकिन अकविता ने संपूर्ण तिरस्कार का परिचय दिया, जो तीखा और प्रबल है । अकविता के कवियों ने समग्र नकार की बात इसलिए की कि उनका यथार्थ ज़्यादा कटु है । परिवेश की सही पहचान ने अकविता के कवियों को अधिक आक्रोशी बना दिया -

"पर सारे नियम इस देश में केवल कुछ लोगों के
स्वार्थ के अस्त्र हैं
और उन अस्त्रों को विवेक से काटने को युद्ध ज़रूरी है
लगता है
मैं जब तक इस धरती पर ज़िन्दा हूँ
चुप न बैठूँगा
करूँगा कोलाहल,
खोदूँगा पहाड़,
और लड़ूँगा अनवरत एक न खत्म होनेवाली लड़ाई ।"[1]

अकविता सभी प्रकार के दिखावे के विरुद्ध की प्रतिक्रिया है । "अकविता में एक "औघड़ी निराकुलता" मिलती है, जो विकृतियों पर सीधे चोट करती है और गन्दगी को गन्दे समझे जाने वाले शब्दों में भी कह सकती है ।"[2] इस कारण से अकविता में सीधी और सपाट शब्दावली का प्रयोग हुआ है ।

भ्रष्टाचार विरोधी दृष्टि की कविता

अकविता को सामाजिक दृष्टिविहीन कविता के रूप में

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 13.
2. जलते और उबलते प्रश्न, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 271.

घोषित किया गया है । लेकिन अकविता ने सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक भ्रष्टाचार का तीखा विरोध किया है । भ्रष्टाचार का विरोध दृष्टिविहीन कविता नहीं कर सकती । अत: अकविता की इस प्रवृत्ति को परवर्ती कविता की आधार-शिला भी कह सकते हैं ।

अकविता के कवियों का मन्तव्य अन्तर्विरोधों की खोज रहा है । वे राजनीति के क्षेत्र में फैले हुए भ्रष्टाचार से पूरी तरह वाकिफ है । इसलिए राजनीति के प्रति उनके मन में किसी भी प्रकार का झुकाव नहीं । क्योंकि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राजनीति जनशोषण तथा जनदमन का पर्याय बन गई । प्रजातंत्र में रहते हुए भी उसमें आम आदमी की सत्ता नगण्य है । प्रजातंत्र के विरोधी, अवसरवादी, सुविधा-भोगी शक्तियों की दृष्टि में प्रजातंत्र एक अर्थहीन वस्तु है । इस कारण से प्रजातंत्र की भलाइयाँ साधारण लोगों के लिए बुराइयों का ही काम करती हैं । हम इस विरोधी-स्थिति के भोक्ता होते हुए भी उसके विरुद्ध कुछ नहीं करते । उसे सहज मानकर स्वीकारते हैं । राजनीति के भ्रष्ट प्रतिमानों से अकविता का कोई नाता नहीं । गंगाप्रसाद विमल का कहना सच है -

"सरकार आटा डालती है
प्रजातंत्र का
और चींटियाँ बढ़ रही हैं
कष्ट विष धारण किए हुए ।"[1]

अकविता के कवियों का ध्यान आम-आदमी की असहायता, असुरक्षा तथा निराशा की ओर भी गया है । "वापसी" कविता में कुमार विकल लिखते हैं -

---

1. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 35.

"राजपथ की जनतंत्री व्यवस्था में
मैं अकेला और अरक्षित हूँ
मेरे स्नायु-तंत्र पर भय और आतंक की
कंटीली झाड़ियाँ उग आई हैं
जिन्हें काटने के लिए सख्त हाथों के साथ-साथ
खुरदरे शब्दों की ज़रूरत है ।"[1]

प्रजातंत्र को जनतंत्र के नाम से अभिहित कर कुमार विकल यह कहना चाहते हैं कि ऐसी व्यवस्था में वही जीवित रह सकता है, जो ताकतवर है । "यूँ गलत व्यवस्था ही आज के जेनुइन कवि को विसंगति और विक्षुब्ध इन्सान के अन्धकार में भटका रही है ।"[2] व्यवस्था की अर्थहीनता से परिचित कवि चुनाव को तनिक भी महत्व नहीं देते हैं । कुमार विकल अपनी कविता "जनतंत्र और मैं" में अपने भोलेपन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराते हैं -

"मैं भी कितना भोला हूँ कि हर पाँचवें साल
एक परची देकर बहला लिया जाता हूँ
और वह परची मेरे पाँव से दिल्ली पहुँच जाती
कालान्तर में मुझसे बहुत दूर चली जाती है
और मैं पीछे
मतदाताओं की सूची में एक क्रम संख्या
रह जाता हूँ ।"[3]

कवि अपने भोलेपन के बहाने सभी लोगों की विवशता का परिचय देते हैं । मतदाताओं की सूची में मात्र एक क्रम-संख्या रह जाना हर मानव की नियति है ।

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 168.
2. क्योंकि समय एक शब्द है, रमेश कुन्तल मेघ, पृ. 477.
3. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 164.

वास्तव में आदमी की पहचान नहीं होती, क्रम संख्या का अस्तित्व है । अपनी इस लाचारी से मुक्त होने की चाह प्रकट करते हुए कुमार विकल लिखते हैं -

"मैं आदमी बनकर जीना चाहता हूँ
न कि एक क्रम संख्या ।"[1]

इस प्रकार के अनेक संदर्भ अकविता में हैं, जो यह साबित करते हैं कि राजनीति जनता के दमन तथा शोषण का पर्याय रह गई है । "निर्माण"में विनय लिखते हैं -

"सबकुछ बन रहा है मेरे देश में
नगर.....भवन....सड़कें....योजनाएँ
लेकिन निर्माण की इस दौड़ में नहीं बन पाया
है अब तक
एक अदद आदमी..... एक अदद आदमी ।"[2]

"कवि की चेतना में आज की सिद्धांतहीन और अविश्वसनीय राजनीति को लेकर क्रोध और घृणा है । यह राजनीति के अमानवीकरण का परिणाम है ।"[3] इस तरह व्यवस्था की असफलता, अराजकता और दिशाहीनता का पर्दाफाश ही वास्तव में सातवें दशक की कविता या अकविता का लक्ष्य रहा है । अकविता के कवियों ने महसूस किया "प्रजातंत्र अपनी वर्तमान-शक्ल में केवल छल लगता है । प्रजातंत्र की ऐसी विदूषित रूपाकृति बनाने का कार्य किया है स्वार्थान्ध, सत्ता लोलुप, पूँजीपतियों ने । जनशक्ति को वशीभूत करने का सरलतम उपाय "प्रजातंत्र" है । इसलिए पेशेवर राजनीतिक खिलाड़ी

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 165.
2. वही, पृ. 59.
3. क्योंकि समय एक शब्द है, रमेश कुन्तल मेघ, पृ. 475.

प्रजातंत्र का दोहन करते हैं । उससे वे अपनी सत्ता-लिप्सा की परितृप्ति करते हैं ।"[1]

मूल्य विघटन से चिन्तित कविता

"एक ओर विज्ञान और प्रविधि ने सारी अर्थव्यवस्था को यांत्रिक और स्वत: चालित बना दिया है, दूसरी ओर अर्थव्यवस्था का यह रूप व्यक्ति और समाज के सारे संबंधों को जड़ और निरपेक्ष बना रहा है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति और समाज पर आश्रित समस्त मानवीय मूल्यों का निरर्थक हो जाना सहज है ।"[2] मूल्य जीवन के हर क्षेत्र तथा अनुभव के साथ संगति स्थापित करता है । मूल्य विघटन की स्थिति इनके साथ असंगति से होती है । मूल्य विघटन मूल्यों का अभाव नहीं, मूल्यों की अस्वीकृति या उसका विरोध है ।

अकविता के लिए पुराने मूल्य और सौंदर्यबोध तिरस्कार की वस्तु है । प्रचलित मान्यताओं, नैतिक धारणाओं और संस्कारों के प्रति अकविता के कवियों ने अस्वीकृति प्रकट की है । परिवेश की विद्रूपता के कारण ही इन कवियों ने मानवीय मूल्यों को झकझोर दिया । अकविता वास्तव में आस्था के अयाचित चिह्नों के निषेध की कविता है । ईश्वर, धर्म, संस्कृति आदि के प्रति अकवियों का दृष्टिकोण लीक से हटा हुआ है । अकवि का नया

---

1. आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 133.
2. आधुनिकता और सृजनशीलता, रघुवंश, पृ. 79.

मूल्य उसे यों कहने को बाध्य करता है -

"मुझे अब नहीं करना है विश्वास बदलते आकाश पर
रिरियाते ईश्वर पर ।"[1]

"अब नहीं करना है" कहने मात्र से स्पष्ट है कि परिवेश के दबाव के कारण ही कवि ईश्वर की सत्ता को नकारने की बात करते हैं । धार्मिक क्षेत्र विकृतियों का जाल बन गया तो अकविता के कवियों ने धर्म के प्रति अपनी आस्था छोड़ दी ।

पारिवारिक मूल्य भी बदलाव का शिकार है । आज के सभी संबंध खोखलेपन का परिचय देते हैं । संबन्धों में कोई ऊष्मलता नहीं है । इन सब कारणों से जगदीश चतुर्वेदी "इतिहासहन्ता" में लिखते हैं -

"माँ और बहिन और पत्नी और प्रिया में अब
कोई अन्तर नहीं दिखता है मुझे ।"[2]

अब संबंधों की पवित्रता का कोई महत्व नहीं रहा । तमाम बदलावों को विघटित मूल्य-स्थिति के सम्मुख रखकर सचाई के साथ प्रस्तुत करने का कार्य अकविता के कवियों ने किया है । जगदीश चतुर्वेदी की कविता "प्रतिबद्धता" इस संदर्भ में उल्लेखनीय है -

"एक जिम्मेदारी की करवट बदलकर
चिपक जाती है पत्नी

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 32.
2. वही, पृ. 27.

और उसे प्यार करने के नाटक में
मैं अज्ञात प्रेमिकाओं के गले घोंट देता हूँ
हर रात ।"[1]

माथे पर शिकन पड़ जाए, इस उद्देश्य से ऐसी कविताएँ नहीं लिखी गई हैं । जीवन का आन्तरिक रूप इस हद तक बदल गया है कि स्वीकृत प्रतिमान इतने खोखले नज़र आते हैं और अकवि अतिरंजित दृश्य-स्थिति उपस्थित करता है जिसमें सारे संबंधों पर प्रश्न-चिह्न लगा दिए गए हैं । अकविता ने वास्तव में मूल्य-विघटन की चिन्ता को बराबर ऐसा ही प्रस्तुत किया है ।

नगरबोध की कविता

अकविता को नगरबोध की कविता भी कही जा सकती है । मानवीयता को ठेस पहुँचानी यांत्रिक सभ्यता को अकवियों ने वर्ण्य विषय के रूप में स्वीकारा है । "नगर जीवन तथा उसकी विडंबनाओं को अकवियों ने अपना कन्टेन्ट बनाया है ।"[2] जगदीश चतुर्वेदी ने महानगर के विषाक्त वातावरण को "एक जिंघासु का वक्तव्य" में प्रस्तुत किया है -

"भर गया है
ज्वालामुखी के विषैला धुआँ
इस महानगर की निरापद शांति में ।"[3]

---

1. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 73.
2. साठोत्तरी हिन्दी कविता की वस्तु चेतना, डॉ. बादाम सिंह रावत, पृ. 56.
3. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 45.

विषैला धुआँ तनावग्रस्त वातावरण के एहसास को गहराता है । महानगर की ज़िन्दगी की असलियत गंगाप्रसाद विमल की कविता "अशमित" में स्पष्ट होती है -

"आदमी को निगलते भवन
चूसते
पिचर प्लांट की तरह पूरे के पूरे नगर
रास्तों पर मरे हुए कीडे
और अधमरे अपनी केंचुल संभाले हुए
छाती से लगाए जन्म विकलांग चेहरे ।"[1]

शहरी जीवन की भयानकता के अनेक संदर्भ अकविता में उभरते हैं । परेश की कविता "विसंगति" शहरी जीवन की यांत्रिकता पर प्रकाश डालती है -

"आपको लगता है मैं इस शहर में रह रहा हूँ
यह झूठ है
मैं इस शहर को केवल सह रहा हूँ ।"[2]

शहरी जीवन की यंत्रणा का सही अंकन करनेवाली अनेक कविताएँ अकविता के कवियों ने लिखी हैं । यांत्रिक सभ्यता तथा नगरीय जीवन के बीच पिसती जनता को, उसकी विडंबना को अकवियों ने काफी सहजता से चित्रित किया है । महानगर अकविता में स्वीकृत एक सशक्त बिम्ब है ।

---

1. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 12.
2. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 132.

अस्तित्व की चिन्ता की कविता

पश्चिम के अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव भारतीय साहित्य पर पडा है । इसका निषेध नहीं किया जा सकता । लेकिन उसे अनुकरण कहना सरासर गलत होगा । अस्तित्वबोध मात्र जैविकता की स्थिति नहीं, अपितु जीवन की सार्थकता का बोधक भी है । अकवि अस्तित्ववादी दर्शन से अवश्य प्रभावित है । इसके पूर्ववर्ती युग के कवि भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे । "अलगाव तथा अस्तित्व के संकट की जो शुरुआत नई कविता ने की थी, उसे अकविता ने चरम सीमा तक पहुँचा दिया ।"[1] अलगाव तथा अस्तित्व का संकट अस्तित्ववादी दर्शन का प्रतिपाद्य है ।

अस्तित्ववादी दर्शन व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता पर बल देता है । व्यक्ति अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए हमेशा संघर्ष करता रहता है । अपने इस अनवरत संघर्ष में वह उस सचाई का साक्षात्कार करता है, जो उसकी नगण्य सत्ता से अवगत कराती है । अस्तित्ववादियों ने उन सभी वस्तुओं तथा विचारों का खण्डन किया जो मानव के अस्तित्व में बाधक है । अपने अस्तित्व को अर्थ देने के प्रयास में उसे निरंतर संघर्ष का सामना करना पडता है, क्योंकि आत्मघाती स्थितियों से बचने के लिए संघर्ष एकमात्र विकल्प है । अपनी इस संघर्ष-प्रक्रिया में जगदीश चतुर्वेदी महसूस करते हैं कि केवल अस्तित्व ही सच है -

"और तभी चीत्कार करता एक स्वप्न
मेरे पैरों के पास घायल पडा था

---

१. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, सं. कमल किशोर गोयनका, पृ. 276.

मुझे लगा था न सच घृणा है, न प्रेम
सच है केवल अस्तित्व
जो न जीता है, न मरता है
केवल कुछ शरीरों में पैदा कर देता है हलचल
कुछ भूखंड भरते हैं ।"[1]

जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार अस्तित्व कुछ शरीरों में हलचल पैदा करता है तो कैलाश वाजपेयी अपनी कविता "अस्तित्वबोध" में लिखते हैं -

"मैं इस खोखले, अटूट और निश्चित क्रम से
छुटकारा पा जाऊँ -
कहाँ चला जाऊँ ?
ईश्वर यदि सचमुच तुम हो
सचमुच कहीं हो- तो
उत्तर दो:
कहाँ चला जाऊँ कि अस्तित्वबोध मर जाये
और
मुझे सपनों से
नारों से
लोगों से
हरदम के लिए मुक्ति मिल जाये ।"[2]

यहाँ कवि छुटकारा पाने की लालसा प्रकट करते हैं और अस्तित्वबोध मिटाने की चाह भी उनमें हैं । वास्तव में अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से विसंगत वातावरण

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 70.
2. प्रारंभ, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 47.

में मनुष्य के अपने से और समाज से हुए अलगाव को वाणी मिली ।

अकेलापन की त्रासद भावना से गुंफित कविता

जीवन में व्याप्त सांस्कृतिक संकट, आतंक और विघटन को अकविता में स्वीकृति मिली है । एक सांस्कृतिक शून्य के कारण कविता में अकेलापन, आत्म निर्वासन तथा निरर्थकताबोध की प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला । अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव इन कविताओं में व्यक्त अजनबीपन, एकाकीपन, आतंक और विशृंखलता की तीखी अनुभूतियों में दिखाई पड़ता है । × × × सामूहिक नाश और अनिश्चित भविष्य के आतंक और भय ने उनमें अकेलेपन, ऊब और आकांक्षाजन्य उदासी का गहरा और तीखा बोध उत्पन्न कर दिया है ।"[1] व्यक्ति टूटन का शिकार है और एक प्रकार की शून्यता उसमें घर करती आ रही है -

"गली में केवल मैं हूँ
और मेरा शून्य व्यक्तित्व
न मुझमें कोई हरा प्रकाश है
न मुझमें कोई ठहरा जल है
मैं तो किसी बाँसुरी की भटकती एक आवाज़ हूँ
जिसको सदियों पहले स्वर दिया गया था ।"[2]

शून्यता तथा व्यर्थताबोध से आक्रांत व्यक्ति के मन में जीवन

---

1. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 137.
2. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 61.

के प्रति एक प्रकार की अनास्था का होना स्वाभाविक ही है । जगदीश चतुर्वेदी अपने को एक बाँसुरी की भटकती आवाज़ कह कर जीवन की व्यर्थता और निस्सारता की ओर संकेत करते हैं ।

कैलाश वाजपेयी की कविता "भटका हुआ अकेलापन" घबराकर शीशा तोड़ देने की बात बताती है -

"यह अधनंगा शाम और
यह भटका हुआ
अकेलापन
मैं ने फिर घबराकर अपना शीशा तोड़ दिया ।"[1]

सभी मानवीय मूल्य ध्वस्त हो चुके हैं । व्यक्ति इस मूल्य संकट से आक्रांत है । अकविता में ऐसे व्यक्तियों की मानसिकता की झाँकी मिलती है, जो यह सोचता है कि वह नितांत अकेला है, सारी यातनाओं का भोक्ता वह स्वयं है । उसका कोई सह-भोक्ता नहीं, बल प्रदान करनेवाला नहीं । वस्तुतः अकेलेपन तथा आत्म-निर्वासन की भावना का उदय उस समय होता है, जब समाज में मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्यक् विकास नहीं होता, उसे समुचित स्थान नहीं मिलता । जीवन की विडंबनात्मकता का अकवियों ने अनुभव किया है । मोहभंग के कवि होते हुए भी वे निराशावादी कभी नहीं रहे । उनकी कविताओं में जीवन की टूटन और विसंगति का चित्रण है । यह हमारे सामाजिक यथार्थ भी है ।

---

1. प्रारंभ, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 55.

मृत्युबोध की कविता

मृत्यु मनुष्य को सचेत करती है । संत्रास तथा शून्यताबोध से आक्रांत मनुष्य अपनी तुच्छता को जल्द से जल्द महसूस करते हैं । अपने अस्तित्व की व्यर्थता तथा मृत्युबोध अकविता के प्रमुख विषय हैं । गंगाप्रसाद विमलनेअपनी कविता "अशुत" में इस मृत्युबोध को वाणी देने का कार्य किया है -

"एक भभआता हुआ धुआँ है हम सबके ऊपर
हम सबके ऊपर अन्तरिक्ष के रंगों का अन्धेरा है
हम सबके ऊपर मृत्यु है । अनिर्वचनीय ।"[1]

जगदीश चतुर्वेदी की कविता "नगर यंत्रणा" में मृत्यु के वरण से अपने को विसंगति-जन्य परिवेश से बचाने की कोशिश है -

"इस अनिश्चित घोंघे को उतार फेंकना चाहता हूँ
और
अपने जर्जरित अंगों को
किसी नामालूम मुश्किल से गर्म करना चाहता
सच यह है
कि मैं इस कोटीन से ऊबकर मरना चाहता हूँ ।"[2]

इस तरह अकविता अपने प्रभाव के भिन्न-भिन्न आयाम के होते भी अपने समय की सही धड़कन को रेखांकित करने तथा उसे पहचानने में सफल रही ।

---

1. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. ।।.
2. वही, पृ. 64.

प्रमुख कवि

अकविता के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में जगदीश चतुर्वेदी का नाम निर्विवाद है । वे अकविता के मसीहा हैं । उनकी कविताएँ अकविता की मानसिकता की सार्थक प्रस्तुति हैं । रोटी, हड़ताल, राजनीति जैसे मोटे विषयों को कविता के लिए स्वीकारने में हिचक प्रकट करनेवाला कवि उन सबको नकारते हैं, जो व्यक्ति की भलाई के खिलाफ है । "वे एक स्वस्थ समाज के समर्थक हैं, जहाँ पाखंड, रोक-टोक, घेराबन्दी और पराधीनता न हो । संबंधों में स्वतंत्रता का ही नहीं, स्वेच्छाचार का भी अधिकार हो । यदि यह संभव नहीं है तो इस कैदखाने के खिलाफ घृणा का प्रचार वह बुरा नहीं मानते ।"[1] जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं पर, खासकर अकविता पर अलग से विचार किया गया है अतः अकविता के अन्य कवियों के बारे में विचार करना उचित है ।

अकविता के विकास के इतिहास में श्याम परमार का योगदान महत्वपूर्ण है । "अकविता और कला संदर्भ" में उनकी अकविता संबंधी मान्यताओं की सही अभिव्यक्ति मिलती है । उनके अनुसार अकविता काल की निरंतरता से संबद्ध है । "यह कालधर्मी कविता है ।"[2] अर्थ की दृष्टि से कैसी भी हो, अभिव्यक्ति की दृष्टि से सुविधाजनक विषय को वे काव्य के लिए स्वीकारते हैं । वे अव्यक्त की तलाश करनेवाला अकवि है । उनकी कविताओं का संग्रह नहीं निकला । समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ प्रकाशित होती हैं ।

---

1. समकालीन कविता की भूमिका, सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय व मंजुल उपाध्याय, पृ. 34.
2. अकविता और कला संदर्भ, श्याम परमार, पृ. 13.

अपने से अलग होने की चाह तथा जंगलों में निरावृत होकर आदमी की तरह दौड़ने की कामना उनकी स्वतंत्रताकामी चेतना की अनुगूँज है । उनकी कविता "एक विद्रूपम्" काफी उल्लेखनीय है -

"अहम् के एक टुकड़े के तले
तराशे खंड सा
अपने से अलग होना चाहता हूँ
ताकि मेरा स्वत्व आदमी की तरह
जंगलों में निरावृत होकर दौड़ पाए ।"[1]

कवि और पाठक के बीच की गहरी खाई से वे अवगत हैं । पाठकों से उनका कहना है -

"तुम तो निहायत ईमानदारी से किताबों के रास्ते
कविता के करीब पहुँचे हो
मगर बात यह है कि अब तुम्हारी पहुँच और मेरी कविता
के बीच
बहुत सी सड़कें बन गई है और उन सड़कों के पिछले
बीस सालों में
कई गड्ढे हो गए हैं ।"[2]

कविता की सही पहचान कवि की मानसिकता को समझने से ही संभव है । कवि के अनुसार जटिल या ऊट-पटांग लगने से कविता को वैसे ही छोड़ना है, जैसे अखबार की खबरों के शीर्षक पढ़कर पूरे पन्ने पलट देते हैं -

---

1. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 107.
2. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 99.

"और जो सबसे अधिक उसमें के अन्धेरे को
अपने अन्धेरे के साथ मिला पाता है
वह मेरी कविता से होकर
मेरे पास आ जाता है ।"[1]

कवि के सृजनात्मक अनुभव का साधारीकार ही कविता के वास्तविक आस्वादन की कसौटी है ।

गंगाप्रसाद विमल ने अकविता के विकास में रचनात्मक सहयोग दिया है । व्यवस्था की विद्रूपता को उनकी कविताएँ सहजता से प्रस्तुत करती हैं । परिवेश की टकराहट से वे परिचित हैं । इसलिए उनकी कविताओं में अतीत, भविष्य आदि के प्रति नकार की भावना निहित है । विद्रूप-अवस्था से आक्रांत होने के कारण वे पूछते हैं -

"क्यों नहीं
फट जाते पन्ने इतिहास के
क्यों नहीं राहें विपरीत हो जाती हैं ।"[2]

उनका यों सोचना सार्थक है क्योंकि मनुष्य आज एक ऐसी दुनिया में जीने को मज़बूर है, जो नितांत विसंगत है । ऐसी हालत में भविष्य की आशा भी निरर्थक है । "भविष्य" नामक कविता में वे लिखते हैं -

"भविष्य एक गोल डिब्बे में बन्द है
और बच्चे खेल रहे हैं डिब्बे से ।"[3]

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 100.
2. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 37.
3. वही, पृ. 41.

आज का जीवन इतना त्रासदायक है कि कवि उनके कारणों को खोजने की कोशिश करते हैं । मृग तृष्णा के पीछे दौडने वाले मृग से आज के मानव की तुलना सार्थक है -

"हम सब खलनायक हैं
इस जीवन त्रासदी नाट्य के
मृग तृष्णा के पीछे दौड रहे
माध्यम विहीन
पीडित मृग हम सब खलनायक ।"[1]

ऐसे माध्यम विहीन मानव की असली हालत का चित्रण गंगाप्रसाद विमल की कविताओं में हुआ है । ऐसा मनुष्य आज का यथार्थ है ।

सौमित्र मोहन का अकविता के प्रमुख कवियों में अपना अलग स्थान है । वे सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था के विरोधी हैं साथ ही उस काव्य-व्यवस्था के भी, जो परिवेश की सही प्रस्तुति में हिचक का अनुभव करती है । कवि का लक्ष्य पाठकों की संवेदना पर प्रहार करना है, जो परंपरा का अन्धा अनुकरण करती है ।

जीवन की सचाई को उसके सही संदर्भ में बिना किसी दुराव-छिपाव से अभिव्यक्त करने का कार्य उनकी कविता की निजी पहचान है -

"मध्यावधि चुनाव और सरकारें उलटती रहेंगी
भाषा सामरया बनी रहेगी

---

1. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 18.

विज्ञापनों के मॉडल बदलते रहेंगे
हम धरती से सटकर कविता करते रहेंगे
चलते रहेंगे आन्दोलन, पीटते रहेंगे ढोल
बनाते रहेंगे साहित्यकार को मरने के बाद महान्
और पौंछते रहेंगे अपने होठों पर से
चाट-पकौड़ी की सोंठ ।"[1]

"कीर्तन" नामक कविता की इन पंक्तियों में कवि ने कोई अतिरंजित घटना का उल्लेख नहीं किया; यथार्थ का चित्रण भर किया गया है ।

"लुकमान अली" उनकी एक लंबी कविता है, जिसमें समाज तथा राजनीति के क्षेत्र के अन्तर्विरोधों का प्रक्षेपण हुआ है । "लुकमान अली" मात्र एक दर्शक है, अन्याय, भ्रष्टाचारिता, मूल्यहीनता और नारे लगानेवाले नेताओं की भीड़ का दर्शक । वह चुनाव की जीत के रहस्य से पूरी तरह अवगत है -

"वह जानता है कि चुनाव
लोगों की राय का प्रतीक नहीं, धन और धमकी
का अंगारा है ।"[2]

व्यवस्था तथा उसके खोखले आदर्शों की खुली अभिव्यक्ति उनकी कविता की खासियत है ।

अकविता के कवियों में राजकमल चौधरी का नाम काफी

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 77.
2. समकालीन कविता की भूमिका, सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय व मंजुल उपाध्याय, पृ. 165.

चर्चित है । "मुक्ति प्रसंग" उनकी कविताओं में विशेष उल्लेखनीय है । इसमें कवि ने अपने और समाज के यथार्थ को उसके सही परिप्रेक्ष्य में अंकित करने का कार्य किया है । इसमें सारी स्थितियों का सूक्ष्म और अमूर्त अंकन नहीं, स्थूलता तथा मूर्तता को प्रधानता देकर उन सबका विवरण कवि ने दिया है । "मुक्ति प्रसंग" में न उत्तेजना को छिपाया गया है, न अपने मन के उतार-चढ़ावों को, न आज़ादी के बाद देश की दशा को, न बीसवीं शताब्दी में सभ्य और समृद्ध कहे जाने वाले अगणित अत्याचारों को ।"[1] उनकी कविताएँ यथार्थ से सीधा साक्षात्कार कराती हैं । "राजकमल चौधरी की कविताओं में असहमति, अस्वीकार और निषेध की पैनी धार है । इसमें उत्कट भावनात्मक आक्रोश है ।"[2] उनकी कविताओं में जो तीखापन है, वह जीवन के वास्तविक अनुभवों की ही उपज है । "मुक्ति प्रसंग" में अपने देश का परिचय वे देते हैं -

"नीले काँच का फूलदान है मेरा देश
नए हर्षवर्धन जयवर्धन के लड़खड़ाते तोपों की ठोकर से
टूट कर बिखर जाता है ।"[3]

उनकी कविता जीवन की मूल समस्या की ओर भी इशारा करती है -

"मगर भीड़ अब खाने के लिए गेहूँ
और सो जाने के लिए किसी भी गंदे बिस्तर के सिवा
कोई बात नहीं करती है ।"[4]

---

1. समकालीन कविता की भूमिका, सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय व मंजुल उपाध्याय, पृ. 51.
2. दृश्यांतर, नरेन्द्र मोहन, पृ. 83.
3. समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 123.
4. वही, पृ. 124.

यहाँ कवि ने जीवन की उस विकट समस्या का संकेत किया है, जिससे तमाम लोग सदैव परेशान हैं ।

अन्य अकवियों की भाँति राजकमल चौधरी भी अतीत और भविष्य की चिन्ता को हेय मानते हैं । वे कहते हैं -

"केवल वर्तमान में जीते हैं अब समस्त प्रजाजन
मर जाते हैं अतीत में और भविष्य में मर जाते हैं ।"[1]

वर्तमान ही सत्य है । एक ऐसा वर्तमान जिसका भोक्ता स्वयं हम सब हैं । उसको ही वे सबकुछ मानते हैं ।

मीना गुलाटी की कविता अपने आसपास के अन्तर्विरोधों को साहसिक मुहावरे में प्रस्तुत करती है । परिवेश की विसंगतियों के कारण उनकी कविताएँ गहरे असंतोष को प्रकट करती हैं । पुरुष इतिहास का अन्त कर देने की चाह उन्होंने प्रकट की है । उनकी कविता "स्नेस्वेकतोय" चर्चित है -

"तमाम दार्शनिक, तमाम तांत्रिक, तमाम साधक
बुद्ध, नीत्शे, सेनेका, सुकरात की मुद्रा लिए
अपनी जिज्ञासाएँ
मुझ पर फेंक देते हैं । मैं
अपनी मुट्ठी में बन्द खिलखिलाहट से उन्हें
पागल कर सकती हूँ ।"[2]

---

1. समकालीन कविता की भूमिका, सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय व मंजुल उपाध्याय, पृ. 124.

2. वही, पृ. 241.

अकविता के कवियों ने परंपरा से चिपके रहने की खिल्ली उडायी है । परंपरानुगमन पर करारी चोट करती हुई मोना गुलाटी लिखती है -

"तुम अपने पूर्वजों की सजैली कुतिया का गला काटने में
हिचकिचाते हो और
बदले हुए झंडे कभी हिचकिचाहट को माफ नहीं करते
दोस्त ।"[1]

मोना गुलाटी की यह निषेधात्मकता परंपरा का अन्धा अनुसरण करनेवालों से बेहतर है । उनकी यह नकारात्मकता कम से कम ईमानदारी का परिचय देती है ।

अकविता को प्रश्रय देनेवालों में रमेश गौड का नाम अवश्य उल्लेखनीय है । उनकी मान्यता है कि खुद को चक्रव्यूह ढहाना जीने की अनिवार्य शर्त है । रमेश गौड की कविताओं में सपाट सामाजिक आलोचना की अधिकता है । विडंबनाओं को अपने ढंग से महसूस करते हुए कवि का कथन है -

"हमारी राह का
एक सिरा बिच्छू घाटी है
और दूसरा अन्धा गुफा
आश्रय के नाम पर मिली है
साँपों की कुंडलियों में कसी हुई टहनियाँ
विषधर्मा बिच्छुओं से लदी-फँदी पत्तियों की छाँव
एकमात्र पाथेय - घुन लगे पाँव ।"[2]

---

1. समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 243.
2. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 178.

'मेरी पीढ़ी' एक आत्म स्वीकृति को इन पंक्तियों के द्वारा कवि ने परिवेश की विद्रूपता का और इशारा किया है ।

व्यवस्था तथा उसकी भ्रष्ट-नीति से अकविता के कवि खूब परिचित हैं । मौजूदा व्यवस्था की विशेषता यह है कि हम किसी पक्ष में रहें, हारने को विवश है । "अन्धेरे से अन्धेरे तक" रमेश गौड़ की एक चर्चित कविता है -

"क्योंकि मैं एक ऐसी व्यवस्था में रहने को अभिशप्त हूँ
जिसमें वादी या प्रतिवादी नहीं,
सिर्फ वकील जीतते हैं ।"[1]

राजनीति के खोखलेपन से सब परिचित हैं । उसके विरुद्ध कोई आवाज़ नहीं उठाते । राजनीति के क्षेत्र में जो दलबदल की तमाशा है, "कहीं कुछ नहीं होता" नामक कविता में स्पष्ट होती है -

"लाल टोपी पहनकर गया हुआ विधायक
सफेद टोपी पहनकर लौट आता है और सफेद वाला काली ।
इसके अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं बदलता ।"[2]

व्यवस्था और राजनीति के अतिरिक्त कवि बुद्धिजीवी समाज पर भी चोट करते हैं, जो लगातार अपनी क्लीवता का ही परिचय देता है -

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 176.
2. वही, पृ. 185.

"राष्ट्रकवि बजट की प्रशंसा में कविता पढ़ देता है
और भाँड कवि भारत-सम्राज्ञी के पुत्र की शादी पर सेहरा ।"[1]

इस तरह व्यवस्था, राजनीति जैसे भ्रष्टाचार के मूल स्रोतों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करके कवि समय के साथ अपने सरोकार को ही व्यक्त करते हैं । यह पूरे वातावरण की वितृष्णाजनक स्थिति का पर्दाफाश भी है ।

"सह-अकवि" राजीव सक्सेना ने अकविता के विकास में अपना योग दिया है । उनको बौद्धिक कवि भी कहा गया है । "अस्तित्व का गीत" उनकी कविताओं में उल्लेखनीय है । अस्तित्व की रक्षा आज के मानव की सबसे गंभीर समस्या बन गयी है ।

"जन्मती है जो अराजकता हम सबके
व्यक्ति अस्तित्व से और हम सब
आत्म रक्षा के लिए करते हैं
एक दूसरे का सामना दुर्दमनीय ।"[2]

कवि ने संसार की महाकाव्य से तथा अस्तित्व की शब्द से तुलना की है -

"एक महाकाव्य सी दुनिया, और
शब्दों सा हमारा अस्तित्व
सार्थकता कहाँ रेखांकित करते हो ?
महत्ता है निरर्थक महत्वहीनों के बिना ।"[3]

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 186.
2. समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 171.
3. वही, पृ. 169.

वर्जनाओं के प्रति विद्रोह सहज ही है । यह आज के मनुष्य की आदत सी बन गई है । कवि मानते हैं -

"हम सब शब्द हैं, संगत असंगत
सार्थक, निरर्थक, सब अपनी गरिमा में
मस्तक उठाकर उघते हैं अपनी जगह पाने को ।"[1]

अपनी अस्मिता की पहचान तथा अपने को इस विसंगत दुनिया में जीने के योग्य बनाने की कोशिश हर मानव के आचरण का हिस्सा बन गया है ।

चन्द्रकांत देवताले की कविताएँ वास्तव में एक चुनौती है । उनकी कविता राजनैतिक स्वार्थ और फरेब के खिलाफ है, जिसमें आदमी की विवशताओं का सही अंकन है । "आदमी के नृशंस अत्याचार के विरुद्ध उनकी कविताओं में आक्रोश है, इन्सानियत की वकालत उनकी कविताओं का मूल द्रव्य है ।"[2] "बन्द खिड़कियों के पार" में कवि लिखते हैं -

"और बन्द खिड़कियों के पार से
अखबार युद्ध के समाचार
और रेडियो भी ऐसे ही वाहियात शब्द
मुझ पर फेंकेगा
पर मैं रद्दी की टोकरी नहीं बनूँगा ।"[3]

कवि राजनीति के तिलिस्म से भली भाँति परिचित हैं । उनकी कविताएँ व्यर्थताबोध के अन्दरूनी एहसास की कविताएँ हैं । व्यर्थता-बोध

---

1. समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 174.
2. नई धारा, जून-जुलाई 1983, लेख: हम इनसे मिले थे-हिन्दी कवि चन्द्रकांत देवताले, आरसू, पृ. 39.
3. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 41.

उनकी कविता में अक्सर झलकता है -

"राजनीति की दुर्गन्ध झेलते हुए
मैं प्रश्न पर प्रश्न रखकर
उत्तरहीन बलात्कार के दिनों का
तमाशा देखता रहूँगा ।"[1]

कवि महसूस करते हैं कि उनके वक्तव्य उनकी हँसी उड़ाते हैं -

"मेरी कविता स्थगित हो गई है
किटकिटाते दाँतों के बीच
मेरे वक्तव्य
बेवकूफ की तरह
मुझ पर हँस रहे हैं ।"[2]

इस तरह मौजूदा व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को आक्रोशी मुद्रा में पहचानने का कार्य चन्द्रकान्त देवताले की कविता की महत्ता का आधार है ।

कुमार विकल की कविताओं में व्यवस्था के उस खतरे की सही पहचान है, जो इन्सानियत को खत्म करता है । जनतंत्र के रहस्यों के खोखलेपन से कवि खूब परिचित हैं । "कुमार विकल की कविताएँ विसंगति से निर्णय की ओर चक्रवाल की तरह घूमती, विचलित करनेवाली कविताएँ हैं ।"[3]

देश के खतरे कवि को सचेत कराते हैं -

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 41.
2. समकालीन कविता की भूमिका, पृ. 217.
3. दृश्यांतर, नरेन्द्रमोहन, पृ. 85.

"देश खतरे में है
चीज़ों की बढ़ती कीमतों को भूल जाओ
राशन की दूकानों पर लंबी कतारों की ओर मत देखो
देखो सिर्फ देश की सरहदों पर
तैनात दुश्मनों
की फौजों को ।"[1]

मनुष्य की अपेक्षा आज जानवर अधिक सुखी है । "शहर का नाम" कविता में वे लिखते हैं -

"दुनिया का सबसे सुखी आदमी
सुअर
और दुःखी जानवर
आदमी ।"[2]

मूल्यों को विघटित होते देखकर उनके मन में एक ओर असंतोष की भावना है तो दूसरी ओर तीखे आक्रोश की । कवि अपने खिलाफ होनेवाली साजिशों से अवगत हैं -

"मेरे विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा हुआ है
मेरे घर को भुतैया खंडहर बना दिया है
मेरी आकांक्षाओं पर प्रेतों के पेहरे लगा दिये हैं ।"[3]

असुरक्षा तथा अराजकता जीवन के हर क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी हैं । व्यक्ति उस भयानक स्थिति से अवगत तो होता है, परन्तु वह इसके विरुद्ध क्या कर सकता है ?

---

1. हिन्दी साहित्य नई रचनाशीलता, सं. सतीश जमाली, पृ. 81.
2. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 157.
3. वही, पृ. 159.

केवल उस स्थिति को स्वीकारते रहना उनकी नियति है -

"अब मेरा सबकुछ अरक्षित है
मेरा शरीर, शरीर की संभावनाएँ
मेरे संकल्प, आकांक्षाएँ, सहजताएँ ।"[1]

जीवन की विडंबना तथा व्यक्ति की अस्तित्वहीनता को उसके खिनौनेपन के साथ अभिव्यक्त करने का एक माध्यम भर है - कुमार विकल की कविताएँ ।

मुद्राराक्षस की कविता में मानवीय स्थिति की सही प्रस्तुति है । परिवेश की कूरूपता के प्रति उनके मन में घृणा की भावना है । व्यवस्था के छद्म संस्कारों के प्रति उनका मन सचेत है -

"वह खतरा है
क्योंकि उसके हाथ में
हथियार नहीं है और व्यवस्था ने
उस प्रस्तुत शिखंडी के
बिना बाँहोंवाले कन्धे पर
लटकाने शुरू किए हैं
अपने सुझाव ।"[2]

विनय अकविता के सशक्त कवि हैं । समकालीन राजनीति की त्रासदी से उत्पन्न व्यर्थताबोध से वे भली भाँति परिचित हैं । राजनीति के प्रति उनके मन में गहरी अतृप्ति है । राजनीति अब धोखेबाजी का पर्याय

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 163.
2. वही, प. 146.

बन गयी है । वह बौनी भी है । बौनी राजनीति के छद्म व्यवहार का पर्दाफाश उनका लक्ष्य है -

"प्राइम मिनिस्टर हाउस में कुछ अदद लंबे पर्दे
या समाजवाद के नाम पर
सड़कों पर बिकती हुई खद्दर की लुंगी
राक्षस का चेहरा यथावत् है ।"[1]

टुकड़ खोरों को बढ़ावा देना व्यवस्था की एक आदत सी बन गयी है । शोषण का शिकार होते हुए भी इसका अन्त करने की ताकत से वंचित पीढ़ी की मानसिकता की झाँकी विनय की कविता में मिलती है -

"मुझे माफ करना मेरी शताब्दी
अभी नहीं आ सका हूँ तेरे काम ।"[2]

अपनी पीढ़ी की तेजहीनता का आभास यहाँ मिलता है लेकिन उनका मन अपनी विवशता के मारे सबकुछ सहने को तैयार नहीं । वे जुलूस में भाग लेकर बौनी व्यवस्था का अन्त कर देना चाहते हैं -

"पीछे से एक जलूस आ रहा है
और मैं कल या किसी और दिन
उस जलूस में शामिल हो जाऊँगा
यह जलूस उनकी बौनी राजनीति को
उखाड़कर उछाल देगा हवाओं में ।"[3]

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 55.
2. वही, पृ. 64.
3. वही, पृ. 72.

जलूस का भागीदार होने की चाह उनकी क्रांतिचेतना का प्रमाण है ।

परेश की कविताएँ भी व्यवस्था-विरोध की कविताएँ हैं । उनका मन्तव्य व्यवस्था के हर रहस्य का उद्घाटन करना है । उनकी खुली स्वीकृति है -

"व्यवस्था ने जिन्हें
आदमखोरों की गुफाएँ कहकर वर्जित किया
वे ही गुफाएँ हम कवियों का
अनुभव घर बन गईं ।"[1]

व्यंग्य के द्वारा अन्तर्विरोधों का पर्दाफाश उनकी कविताओं की विशेषता है

"लिपि और भाषा के अभाव में
संसद के संवादहीन सत्र
थूक और घृणा के नए
माध्यमों को अपना चुके हैं ।"[2]

अभिव्यक्ति की ईमानदारी तथा जीवन स्थितियों के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण परेश की कविता की महत्ता को दर्शाते हैं ।

प्रमुख अकवियों की रचनाशीलता से गुज़रने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है -

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 124.
2. वही, पृ. 123.

- अकविता में व्यवस्था विरोधी स्वर मुखर है ।
- मूल्य विघटन के चित्र अकविता में भरे पड़े हैं ।
- मनुष्य की अकिंचनता के प्रति अकविता चिन्तित है ।
- भ्रष्टाचार का सख्त विरोध अकविता में हुआ है ।
- वर्जनाओं से मुक्त होने की इच्छा अकविता में स्पष्ट है ।
- अकविता में खोखली परंपरावादी दृष्टि की खिल्ली उड़ाई गई है ।
- अकविता में राजनीति की भ्रष्ट नीति का विरोध किया गया है ।
- अस्तित्व चिन्ता अकविता के केन्द्र में है ।

अकविता के विरोध के कारण

तत्कालीन जीवन की विडंबनाओं तथा विद्रूपताओं को खुली अभिव्यक्ति अकविता में मिलती है । अपने समय की सही पहचान की कविता होने पर भी इसकी भूरी-भूरी प्रशंसा नहीं हुई । अकविता की चर्चा अवश्य हुई है, लेकिन आलोचकों ने इसे कविता के स्वरूप को बिगाड़नेवाली काव्यप्रवृत्ति के रूप में देखा है ।

अकविता का विरोध क्यों हुआ ? यह कम महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है । आलोचकों ने अकविता पर कई आरोप लगाए हैं - गणपति चन्द्रगुप्त के अनुसार - "अकविता में सृजनात्मक दृष्टि की अपेक्षा ध्वंस को, संगठन की अपेक्षा विघटन को, सूक्ष्म तत्वों की अपेक्षा शारीरिक भोग को, जीवन के स्वस्थ

दर्शन की अपेक्षा मृत्यु के दर्शन को, गाँवों की अपेक्षा नगर की कुंठाओं को तथा समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दिया गया है ।"[1] उसी प्रकार डॉ. बादाम सिंह रावत का कथन है -"उनकी कविता में ताज़ापन था, परन्तु कविताओं की वस्तु यौनपरक अधिक थी ।"[2] अशोक वाजपेयी की राय में - "अकवि साक्षात्कार के कवि भी नहीं है । उनकी बुनियादी मुद्रा केन्द्रहीन है, क्योंकि वह किसी स्पष्ट मानव-संबंध या सामाजिक सचाई को संबोधित न होकर सभ्यता, संस्कृति, शहर जैसे सामान्यीकरणों की ओर जाती है ।"[3] श्रीकांत वर्मा कहते हैं -"इन लेखकों ने ज़िन्दगी से किसी भी स्तर पर साक्षात्कार नहीं किया । संसार से उनकी कोई मुठ-भेड़ नहीं हुई बल्कि उन्होंने संसार को, यथास्थिति को स्वीकार कर लिया है ।"[4] प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार - "उसकी बेचैनी की इंतिहा केवल चित्रोपीकरण में प्रकट होती है, प्रकृति और जीवन के अन्तर्निर्यमों को जानने और विश्लेषित करने में नहीं ।"[5] इन सभी आरोपों के मूल में एक बात यह स्पष्ट है कि अकविता सामान्यीकरण पर अधिक ज़ोर देती है । किसी प्रकार की ठोस स्थिति का, मानवीय स्थिति का जायज़ा उसमें नहीं है । अकविता दिशाहीन विद्रोह को बढ़ावा देती है । लेकिन अकविता की निजता विद्रोह के स्वर की बुलन्दी से नहीं है । विद्रोह किसी कवि की मामूली आकांक्षा भर नहीं है । इस दौर में जब वह नई कविता के तेवर से मुक्त हुई थी, लगातार विद्रोही वृत्ति से ओतप्रोत क्यों हुई ? यही सोचने का विषय है । आक्रोश का क्या कारण हो सकता है ? शहरी संस्कृति के

---

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, पृ. 282.
2. साठोत्तरी हिन्दी कविता की वस्तु चेतना, डॉ. बादाम सिंह रावत, पृ. 53.
3. फ़िलहाल, अशोक वाजपेयी, पृ. 62.
4. जिरह, श्रीकान्त वर्मा, पृ. 65.
5. आठवें दशक की कविता, सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ. 221.

विकृत चेहरे के प्रति ; उसकी भयावहता को अश्लील चित्रों से ढकने का कार्य क्यों किया गया ? क्या ये स्थितियाँ मामूली थीं ? इन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना क्या दिशाहीनता का परिचायक है ? मानवीयता का धुरी ही दिशाहीन हो तो ऐसे में अगर कुछ कवियों ने अपने विस्फोट भरे शब्दों के माध्यम से उस धुरीहीनता को प्रस्तुत किया है तो वह कविता की धुरीहीनता कैसे हो जाती हैं ।

अकविता ने भ्रष्ट होती जीवन स्थितियों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । अकवि सेक्स को कविता के लिए त्याज्य नहीं मानते । यह तो ठीक है कि अकविता में सेक्स-चित्रण की अधिकता है । लेकिन उनके सेक्स-चित्रण को हम पूर्ण रूप से तिरस्कृत समझ नहीं सकते, क्योंकि सेक्स जैसे विषयों के माध्यम से अकवि जीवन की कटु-वास्तविकताओं तथा विद्रूपताओं को उभारते हैं । इसका कारण शायद यह भी रहा है कि अकविता के कवि सभी प्रकार के दुराव-छिपाव के खिलाफ हैं ।

अपने समय के तीखे दर्द का सृजनात्मक उपयोग अकवियों ने किया है । मूल्य विघटन की स्थिति में स्पष्ट मानवीय संबंध और सामाजिक सचाई की कल्पना मात्र से कोई फायदा नहीं । बिगड़ जाने वाली स्थितियों की ओर अकवियों ने आक्रोश प्रकट किया । यह तो सही है कि उनके इस आक्रोश से लोगों ने पूरी तरह सहमति न प्रकट की । लेकिन जीवन की गति-विधियों से अकवियों की मुलाकात अवश्य हुई है । सकलदीप सिंह ने कहा भी है - "भारतीय नैतिकता या पोंगापंथी बुर्जुआ माहौल को ध्वस्त करने की

शुरुआत अकविता पीढ़ी ने ही की । इस पीढ़ी की यह एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी देन है हिन्दी लेखन को ।"[1]

अकविता पर आरोप लगानेवालों को यह सोचना है कि ऐसी रचनाएँ आखिरकार क्यों हुईं ? यदि हमारी स्थितियाँ सही-सलामत थीं, तो ऐसा विसंगत चित्रण अकविता में न मिलता । अकविता का जीवन के साथ इतनी निकटता है कि जीवन-यथार्थ की झाँकी सही रूप में उसमें उभरती है ।

अकविता धारा में एक अनिवार्यता थी । "संघर्ष प्रक्रिया की निरंतरता के भीतर ही किसी रचनात्मक प्रस्थान की पड़ताल करना समीचीन होता है । इसी दृष्टि से सातवाँ दशक और अकविता आज की कविता की विकसित ज़मीन की प्रारंभिक किन्तु सार्थक कोशिश कही जा सकती है ।"[2] अकविता से आज की कविता को बहुत कुछ प्राप्त हुआ है । उन संभावनाओं को हम अनदेखा नहीं कर सकते । जगदीश चतुर्वेदी की मान्यता है -"यह काव्य चाहे मान्य रूपों को अस्वीकृत करने के कारण विरोध का शिकार हो या पूर्ववर्ती कवियों के सहज आक्रोश का, पर इसकी संभावनाओं से दृष्टि फेरना हिन्दी काव्य की नवीनतम उपलब्धि को नकारने के समान है ।"[3] उनके इस कथन से स्पष्ट है कि अकविता ने प्रचलित मान्यताओं पर कुठाराघात किया ।

अकविता ने एक दशक की कविता को नवीकृत किया और काव्य-चिन्तन को दिशा देने का कार्य किया है । अकविता की प्रासंगिकता समकालीन कविता की पृष्ठभूमि तैयार करने में है । अकविता समकालीन कविता की पूर्वपीठिका है ।

---

1. नई धारा, अंक-1-2, अप्रैल मई 1979, पृ. 13.
2. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, सं. कमल किशोर गोयनका, पृ. 322.
3. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 38.

अध्याय तीन

जगदीश चतुर्वेदी की अकविताएँ

जगदीश चतुर्वेदी अकविता के प्रवक्ता कवि हैं । लेकिन उनकी काव्य-यात्रा का प्रारंभ अकवि के रूप में नहीं हुआ । उनकी प्रारंभिक कविता स्वच्छन्द एवं काल्पनिक रही है । कल्पना की उन्मुक्तता में विचरण करनेवाले, ग्राम्य-शब्द-संपदा को सहेजते हुए कवि के रूप में प्रारंभिक कविताओं में हम उनको पाते हैं । "जगदीश चतुर्वेदी की काव्य यात्रा" शीर्षक लेख में उनकी प्रारंभिक कविताओं पर विचार करते हुए डा. हरदयाल लिखते हैं -"इसमें ताज़गी और तीव्रता होती है किन्तु यथार्थ और ठोस अनुभव की अपेक्षा कल्पना की रंगीनी और रूमानी अवसाद अधिक होता है ।"[1] अनुभवों के ठोसपन के अभाव के बावजूद उनमें रचनात्मक ताज़गी और भावतीव्रता मिलती है । इसे उनका पहला दौर कहा जा सकता है ।

रूमानी भावबोध

रूमानी भावबोध जगदीश चतुर्वेदी की प्रारंभिक कविताओं की निजी पहचान है । इस दौर की कविताओं में प्रकृति के सौंदर्य के वर्णन के संदर्भ में हो या प्रेमाभिव्यंजना के, रूमानी भावबोध का संस्पर्श सर्वत्र मिलता है । भावतीव्रता तथा ऐन्द्रिय-चेतना इन कविताओं की विशेषता है । प्रेम के भावचित्र की सुन्दर झांकी उनकी कविता "भोर होते ही जगाने आ गई तुम" में मिलती है -

"पवन रथ पर बैठ मैं तुमको लिवाने
गगन-गंगा के सितारों में गया था
पलकियों की गोद में विरहा सुनाती
आँख को विश्वास अपना दे गया था ।"[2]

---

1. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, सं. कमल किशोर गोयनका, प्र. सं. 1985, पृ. 262.

2. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, प्र. सं. 1982, पृ. 46.

प्रेमाभिव्यंजना के संदर्भ में उनकी कलात्मक कुशलता का परिचय यहाँ मिलता है । भावों की तीव्रता के साथ ही साथ ऐन्द्रिय चेतना की सहजता उनकी कविता की खासियत है -

"नदी के कूल पर महुआ हवा मदमस्त है आती
नशे में चाँदनी बिछली हुई नद से लिपट जाती
निरख लो नयन भर दो प्रेमियों की प्रीत को आली ।
हुई मदमस्त सरिता जा रही, निधि आज पाई है ।"[1]

मदमस्त होकर महुआ हवा का आना, चाँदनी का नद से लिपट जाना, सरिता का मदमस्त होकर जाना सहज रूप से हमारी ऐन्द्रिकता पर प्रभाव डालनेवाले दृश्य हैं ।

"पनिहारी जगदीश चतुर्वेदी की प्रारंभिक कविताओं में अत्यधिक चर्चित रचना है । इसमें कवि ने पनिहारी की हरेक भंगिमा का सुन्दर अंकन किया है, जो सौंदर्य चेतना का प्रमाण है -

"पहनकर ओढ़नी सतरंगिया
गागर कमर पर धर ;
महावर से सजे पग धर
चलीं पनिहारियाँ सुन्दर
× × × ×
लिए हैं हाथ में रस्सी
किसी पहुँचे शिकारी सी
झुकाकर चारु अंगों को
झुकी पागल पुजारी सी ।"[2]

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1982, पृ. 17.
2. वही - पृ. 19.

जगदीश चतुर्वेदी की प्रारंभिक कविताओं पर छायावादी और नव-स्वच्छन्दतावादी कविता का प्रभाव तो है ही, वे उर्दू शायरी के प्रभाव से भी मुक्त नहीं है । छायावादी कविता की अमूर्तता उनकी कविताओं की विशेषता रही है । फिर भी छायावादी प्रभाव से मुक्त होने की छटपटाहट स्पष्टत: परिलक्षित होती है । नव-स्वच्छन्दतावादी कविता का, खासकर बच्चन की कविताओं का जो प्रभाव है, वह प्रेमभावना के अंकन के संदर्भ में मुखर है । प्रेम एवं सौंदर्य को चित्रित करते समय एक प्रकार की उन्मत्तता का आभास मिलता है, जो इस प्रभाव का ही सूचक है ।

इस तरह प्रभाव के भिन्न-भिन्न रंगों के होते हुए भी जगदीश चतुर्वेदी की इन कविताओं की अपनी अलग पहचान है । इनमें प्रेम का रंग इतना गाढ़ा है कि वे काल्पनिक प्रेमासक्ति का गान नहीं कर रहे हैं, बल्कि प्रेम का वास्तविक गीत रच रहे हैं । इस दौर में वे पूर्णरूप से सौंदर्य के कवि प्रतीत होते हैं, सौंदर्य में डूबा हुआ कवि, सौंदर्य को आत्मसात करता हुआ कवि और सौन्दर्य के प्रशंसक कवि का रूप इन कविताओं में प्रकट होते हैं ।

रूमानी विद्रोह

जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं का समय के साथ सीधा सरोकार है, चाहे वे अकविता-दौर की कविता हो या अकवितेतर । उनकी प्रारंभिक कविताओं में राष्ट्रीयता तथा सामाजिक चेतना का जो स्वर मुखर है, वह रूमानी है । उनके इस रूमानी विद्रोह में आवेश तथा आत्ममुग्धता का

भाव भी उभरता है । उनकी सामाजिक चेतना का स्पष्ट अंकन "क्रान्तिगीत" में हुआ है, जब वे कृषकों को आह्वान देते हैं -

"पूँजीवादी जो शोषक है, उनका तुम सर्वस्व मिटा दो,
आज मचा दो क्रान्ति कृषक तुम, आज विश्व में क्रान्ति
मचा दो ।"[1]

शोषण पूँजीवाद की निजी मुद्रा है । इस कारण से वे कृषकों को शोषण के विरुद्ध एकत्रित होने का सन्देश देते हैं । उसीप्रकार "शान्तिगीत" में राष्ट्रनायक जवाहर के प्रति अपना आदर प्रकट करते समय उनकी राष्ट्रीय चेतना का स्वर बुलन्द होता है -

"जो सीने पर है फोड़े एशिया के फूट जायेंगे
गुलामी के शिकंजे दूर होंगे धूल खायेंगे
ना रोके से रुकी हैं आज तक इन्सान की आँधी
ना बाँधे से समुन्दर बँध सका न, लहर ही बाँधी ।"[2]

आवेग तथा आत्ममुग्धता का वाहक होते हुए भी उनकी प्रारंभिक कविताओं में जो रूमानी विद्रोह है, वह कवि की सामयिक जागरूकता का ही परिचय देता है । प्रारंभ से ही उनकी कविताएँ समय के साथ अपने साक्षात्कार का परिचय देती हैं । यह पड़ाव सामान्य है । फिर भी संभावनाओं की गुंजाइश की कमी इसमें नहीं है ।

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1982, पृ. 11.
2. वही - पृ. 25.

अकविता की ओर

"पूर्वराग" जगदीश चतुर्वेदी की प्रारंभिक कविताओं का संकलन है, जिसकी आखिरी कविताओं में उनके रागात्मक दृष्टिकोण की समाप्ति की सूचना मिलती है । उनके रूमानी विद्रोह का भी यहाँ अन्त होता दिखाई पड़ता है । इसके बदले अकविताई-तेवर का विकास होता है । जगदीश चतुर्वेदी की कवि-मानसिकता के इस बदलाव का एक कारण उनका दिल्ली जैसे महानगर से साक्षात्कार है । इसके पहले उनका जीवन उज्जैन, भोपाल, नागपुर जैसे छोटे नगरों में बीता । यांत्रिक महानगर की ज़िन्दगी ने कवि को बहुत अधिक प्रभावित किया । महानगर के विषाक्त वातावरण में अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए कवि को संघर्ष करना पड़ा । उस घोर संघर्ष ने कवि को विद्रोही बना दिया । इसलिए शुरू-शुरू में उनमें सड़ी-गली परंपराओं और आरोपित आस्थाओं के प्रति कड़ुवाहट से भरा हुआ स्वर मुखरित है । उनकी इस बदली हुई दृष्टि का परिचय काव्य-संकलन "इतिहासहन्ता" तथा "डूबते इतिहास का गवाह" में मिलता है । "इतिहासहन्ता" की तमाम कविताएँ कवि के आक्रोश तथा निषेध की सूचना देती हैं । "डूबते इतिहास का गवाह" में संकलित कविताओं में वही मुद्रा है । पर वह संयम का परिचय देती हैं ।

"पूर्वराग" में संकलित उनकी कविता "श्मशान. एक लैण्डस्केप" उनके वैचारिक बदलाव का सूचक है -

"सुनसान श्मशान..... निस्तब्धता
धधकती चितायें
गीदड़ की सिसकियाँ ।
सुनते हो -

अवचेतन की टिकटिक ?
धड़कनें धधकीं
कुछ लकड़ियाँ चटकीं हैं
पागल-सा
भंगी का खजैला कुत्ता
माँस नोंचता है,
क्षणभंगुर जीवन का ।"[1]

जीवन की क्षणभंगुरता की ओर संकेत करते हुए कवि ने सुनसान श्मशान का चित्र प्रस्तुत किया है । अलावा इसके उस निस्तब्ध मानसिकता की सूचना भी यहाँ मिलती है जो मृत्यु जैसी वास्तविकता का सामना बेचैनी से करती है ।

विद्रोह तथा निषेध

अकविता की मूलचेतना उसकी निषेधात्मकता है । यह निषेधात्मकता ही वास्तव में कविता को आक्रोशी बनाती है । "आक्रोश ने सिर्फ कविता के ढाँचे को ही नहीं तोड़ा, बल्कि पहले से चले आ रहे विश्वासों और मूल्यों की भी खिल्ली उड़ायी ।"[2] कथ्य तथा शिल्प के संदर्भ में बदलाव इस आक्रोश का परिणाम है । "इतिहासहन्ता" की भूमिका में जगदीश चतुर्वेदी

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1982, पृ. 97.
2. समीक्षा, जुलाई-सितम्बर 1986 लेख, जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, प्रताप सहगल, पृ. 74.

का वक्तव्य है - "आज की कविता अस्वीकृति को निषेध की अनिवार्यता को सहज मानकर स्वीकार करती है ।"[1] अस्वीकृति या निषेध एक अनिवार्यता है, सहज अनिवार्यता । इसलिए ही जगदीश चतुर्वेदी की कविता संपूर्ण निषेध की कविता बन गयी है । अकविता के कवियों का निषेध स्पष्ट है । प्रताप सहगल निषेध के विस्तार की ओर इशारा करते हुए लिखते हैं -"पूरी की पूरी गली-सड़ी संस्कृति और व्यवस्था का निषेध, उन मूल्यों का निषेध, जो सिर्फ ढोंग करने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं ।"[2] जगदीश चतुर्वेदी की खुली स्वीकृति है -"मेरी कविताएँ, यदि दंभ न माना जाय तो एक विद्रोहात्मक, ध्वंसपरक काव्य का विशिष्ट प्रतिनिधित्व करती हैं ।"[3] यह विद्रोह और ध्वंस जगदीश चतुर्वेदी की कविता की जीवन्तता का प्रमाण है ।

जगदीश चतुर्वेदी की विद्रोही चेतना प्रखर है । जीवन की विद्रूपता का वे जब कभी अंकन करते हैं तो विद्रोह का तीखापन प्रकट होता है । शान्ति की कामना असंगत है । यह वास्तव में नपुंसकों का मन्त्र है -

"शान्ति
नपुंसकों का एक मंत्र है जिसे वह युद्ध से डरकर दोहराते हैं
वे इतने टूट चुके होते हैं कि कोलाहल से कतराते हैं ।[4]

कोलाहल को रोकना असंभव है । उसे रोकने की ताकत न बौनी सरकारों में है, न कामचोर अफसर में और न नेताओं में । शान्ति को

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 7.
2. समीक्षा, जुलाई सितंबर 1986, पृ. 74.
3. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 8.
4. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 11.

नपुंसकों का मंत्र घोषित करनेवाला कवि युद्ध का समर्थन करता है । यह युद्ध बर्बरता के विरोध में होनेवाला युद्ध है । उनका मन आजीवन अनवरत लड़ाई को तैयार है । उनकी दृष्टि में यह लड़ाई भविष्य के लिए आवश्यक है और इसे वे अपने युग की सार्थक मज़बूरी मानते हैं -

"लगता है
मैं जब तक इस धरती पर ज़िन्दा हूँ
चुप न बैठूँगा
करूँगा कोलाहल
खोदूँगा पहाड़
और लड़ूँगा अनवरत एक न खत्म होनेवाली लड़ाई ।"[1]

ऐसी लड़ाई जो अनवरत है । "न खत्म होनेवाली लड़ाई" एक ऐसा सूचक है कि जिससे कवि का इच्छित आग्रह प्रकट होता है । जगदीश चतुर्वेदी ने व्यक्ति-संग्राम को महत्व दिया, लेकिन अपने चारों ओर फैले प्रदूषित वातावरण के विरुद्ध उनकी लड़ाई व्यक्तिगत नहीं बल्कि घोषित लड़ाई है, जो कभी भी सामाजिक मुक्ति के खिलाफ नहीं ।

"व्यवस्था ही अव्यवस्था में बदलकर व्यक्ति जीवन को असहनीय बना देती है जिससे अंततः समाज क्षतिग्रस्त होता है ।"[2] व्यवस्था की इस अराजकता को जगदीश चतुर्वेदी अच्छी तरह पहचानते हैं । उनको लगता है कि यह शताब्दी दम तोड़नेवाली है । इसके सीने पर एक घन सा भरपूर हाथ पटक देने की चाह वे प्रकट करते हैं । लेकिन उनको एक बलिष्ट बाँह की कमी

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ.14.
2. लंबी कविता गतिशील यथार्थ की पहचान, डॉ. रत्नलाल शर्मा, पृ.320.

सताती है जो इसके काबिल है । उनका मन प्रश्नाकुल है । इसलिए सोचता है -

"बाप ने मेरे चेहरे पर जो चाँटे जड़े थे, वे सूज आए हैं
और अगर देश के चेहरे पर मैं वही चाँटे जड़ रहा हूँ
तो जनतंत्र नाम का खरगोश चौंकता क्यों है ?"[1]

विकट स्थितियों के प्रति विद्रोह आरोपित नहीं, सहज ही है । सन्तों की वाणी प्रखर है । उनमें समाज के सही पथ प्रदर्शन की शक्ति है । जीवन की कटु-वास्तविकता से जब कभी साक्षात्कार होता है, वे सन्त होने की चाह से वशीभूत होते हैं । क्योंकि अपने अन्दर की आग को बिना किसी दुराव-छिपाव से बाहर लाना है -

"अब होना चाहता हूँ सन्त
ताकि कुछ कह सकूँ
अन्दर जलती आग को बाहर दे सकूँ
अब उकड़ूँ बैठकर लगाना चाहता हूँ ब्रह्मांड में आग
रोकना चाहता हूँ राकेट के पैर
और शताब्दी का दुर्भाग्य ।"[2]

इसप्रकार जगदीश चतुर्वेदी की कविता का विद्रोह तथा निषेध अपने सही संदर्भ में समय की सच्चाई तथा मांग की परिणति है ।

अतीत का नकार

अतीत को महिमामंडित करने का कार्य अकविता के कवियों

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ.48.
2. वही, पृ.34.

से खासकर जगदीश चतुर्वेदी ने नहीं किया । अतीत को नकारने की चेष्टा उन्होंने की है । इसमें उनके अतीत में निहित अतीतोन्मुखी दृष्टिकोण का तिरस्कार ही स्पष्ट होता है । इस कारण से भारत की सांस्कृतिक गरिमा तथा गौरव से कवि का मन पुलकित नहीं हो उठता । इसलिए वे कहते हैं -

"ओ कर्मकाण्डी भारत
मुझे तुमसे, तुम्हारे सांस्कृतिक वैभव और
यश से बू आती है ।"[1]

वास्तव में कवि की यह घृणा उन रूढ़ियों और विश्वासों के प्रति घोर प्रतिक्रिया की परिणति है । अतीत के प्रति लगाव और झुकाव के न होने के कारण हैं । अतीत शिलावत् स्थिति नहीं है । उसने वर्तमान को विनष्ट किया है । अतः उनकी उद्घोषणा है -

"मैं ने अतीत को काट दिया है बेदर्दी के साथ ।"[2]

अतीत का वैभव ज़रा भी उनको लुभाता नहीं । अतीत के सम्मोहन से वे कोसों दूर हैं । उनको लगता है -"अतीत का मोह लिए चौंकने का मतलब है ज़िन्दा मृत्यु ।"[3] अतीत के इन्द्रजाल को मिथ्या कहकर उसे उखाड़ फेंकने की चाह प्रकट करना भी कवि की अतीत के प्रति आस्थाहीनता का प्रमाण है । वह उन स्मृतियों से भी मुक्ति चाहता है, जो उसे अतीत के साथ संबद्ध कर रही है । इन प्रकरणों से स्पष्ट होता है कि अतीत दरअसल रूढ़ियों की वास्तविकता है ।

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 90.
2. वही, पृ. 21.
3. वही, पृ. 144.

परंपरा का खंडन

अतीत को बेदर्दी से काटने का कार्य वही कर सकता है, जो वर्तमान से प्रेरित हो । ऐसे व्यक्ति परंपरा का अन्धा अनुसरण नहीं कर सकता । जगदीश चतुर्वेदी ऐसे व्यक्ति हैं।उनकी कविता में परंपरा का खुला खंडन है । परंपरा से चली आ रही मान्यताएँ कई मायनों में आज के संदर्भ में निरर्थक हैं । हिन्दुस्तान कवि के अनुसार कायर की औलाद है । इस भर्त्सना की अपनी पृष्ठभूमि है ।

"हिन्दुस्तान तुम कायर की औलाद हो
हिन्दुस्तान तुम उस कापुरुष की सन्तान हो जिसने
विभीषण और जयचन्द पैदा किए हैं
हिन्दुस्तान तुम्हारा शरीर सदियों के कोढ़ से बिंधा है
हट जाओ मेरे सामने से पिचके कपाल
मैं तुम्हें देखकर शर्म से झुक जाता हूँ ।"[1]

यथार्थ की वस्तुस्थिति को ठोकर मारकर अमानवीयता के यथार्थ को अपनाने का कार्य कायरता ही है । परंपरा मोह हमें इससे हटाता है लेकिन हमारी वास्तविकता यही है । इस विस्फोटजन्य खण्डन में उस इतिहास को नकारा गया है जो असल में झूठी वास्तविकताओं का दस्तावेज़ हैं ।

देश और देशप्रेम का अर्थ बिलकुल ही बदल गया है । अपने संसार को लेकर जगदीश चतुर्वेदी अधिक चिन्तित हैं । देश को हुए मरोज की

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ.89.

संज्ञा देकर वे देशप्रेम को भी परिभाषित करते हैं -

"देश एक लँगड़ाता वृद्ध मरीज.... देशप्रेम एक अन्धयाशी का दिया हुआ महामंत्र । दुःखती है कोई कनपटी को नस और बाजुओं में रक्तपात की इच्छा पनपने लगती है । एक पाखण्ड का सिर फट जाता है और पैदा होते हैं-असंख्य रीछ, पालतू कुत्ते, चिमगादड़ और वनबिलाव ।"[1]

कवि ने देश को वृद्ध मरीज कहकर उसकी लंगड़ाहट की भी सूचना दी है । देश की इस हालत के द्वारा उसकी संभावनाशून्यता की ओर भी कवि ने संकेत करने की कोशिश की है । यह वास्तव में अकविता के दौर की सामाजिक सच्चाई है । नयी कविता के दौर में हालत इतनी बिगड़ नहीं गयी थी वह युग उतना वृद्ध नहीं था, संभावना शून्य भी नहीं । इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वहाँ शांति और खुशहाली थी । धर्मवीर भारती ने "अन्धा युग" में वृद्ध याचक के माध्यम से युग के अन्धेपन का चित्र प्रस्तुत करने का कार्य किया है, जो इस संदर्भ में प्रासंगिक है -

"यह युग एक अन्धा समुद्र है
चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ
और दर्रों से
और गुफाओं से
उमड़ते हुए भयानक तूफान चारों ओर से
उसे मथ रहे हैं
और उस बहाव में मंथन है, गति है ;

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 38.

किन्तु नदी की तरह सीधी नहीं
बल्कि नागलोक के किसी गह्वर में
सैकड़ों, केंचुल चढ़े, अन्धे साँप
एक दूसरे से लिपटे हुए
आगे पीछे
ऊपर नीचे
टेढ़े - मेढ़े
रेंग रहे हों
उसी तरह सैकड़ों धाराएँ, उपधाराएँ
अन्धे साँपों की तरह बिलबिला रही हैं ।[1]

चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ अन्धा समुद्र यहाँ युग की विडंबनात्मकता का सूचक है । इस वास्तविकता को कैसे अनदेखा किया जा सकता है ? इस कारण से अकविता ने अपनी तमाम स्थितियों पर ऐसा प्रहार किया है कि परंपरा का मोह विच्छिन्न होता है ।

मूर्ति-भंजन की प्रवृत्ति भी जगदीश चतुर्वेदी की कविता में प्रकट होती है । अपनी पीढ़ी की निर्जीव हालत तथा निष्प्राण रहने की विवशता पर वे आघात करते हैं -

"हम सब हैं नियति चक्र में विश्वास रखनेवाली
पीढ़ी की असफल औलादें
निष्प्राण, निर्जीव ।"[2]

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, तृतीय सं. 1968, पृ. 72-73.
2. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र. सं. 1981, पृ. 51.

वास्तव में कवि को इसप्रकार परंपरा के प्रति आस्थाहीन बनाने के पीछे वर्तमान विसंगतियाँ ही काम कर रही हैं ।

आस्थाओं का तिरस्कार

जगदीश चतुर्वेदी की कविता में आस्थाओं का तिरस्कार भी हुआ है । सबकुछ इतना छद्म, बहुरूपिया, उलझा हुआ और अनैतिक हो आया है कि विश्वास, आस्था, नीति के सब आधार ध्वस्त हो चुके हैं -

"कोई भी नहीं है जिसे दूँ विश्वास
लगता है विश्वास का प्रेत मेरे अपने अस्त्र का शिकार
बन गया है ।"[1]

धर्म, ईश्वर आदि अब लोगों की आस्था के पर्याय नहीं रह गये हैं । विडंबनात्मक स्थिति ही आस्थाओं को तिरस्कृत करने को प्रेरित करती है । परमेश्वर तथा स्वर्ग का अहसास निरुद्देश्य है -

"निरुद्देश्य हो गया है स्वर्ग का अहसास
परमेश्वर का अस्तित्व
और उमंग जैसी संज्ञा में दीमक लग गई है ।"[2]

धार्मिक क्षेत्र विकृतियों का अड्डा बन गया । सदाचार, शील, संयम जैसे मूल्य पुरानी पीढ़ी के पथ-प्रदर्शक थे तो नयी पीढ़ी उन सबके प्रति नकारात्मक रुख अपनाती है और उसका खुले तौर पर विरोध करती है ।

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 32.
2. वही, पृ. 70.

उनकी दृष्टि में यह सब मूर्खता का पर्याय है -

"पर धर्म
मेरे लिए कोई समस्या नहीं है और शील संयम
मूर्खता का पर्याय ।"[1]

अहिंसा की महत्ता को मान्यता देने के बदले उसकी सारहीनता की ओर वे ध्यान देते हैं -

"अहिंसा से कोई काम न हुआ, हुआ केवल खौफ से
इसलिए दोस्तो
मेरी टूटी नब्ज को पहचानो
और मेरी सीख मानो ।"[2]

जगदीश चतुर्वेदी की इन तमाम कविताओं में एक आक्रामक रवैया ही देखने को मिलता है । जो भी स्वीकृत हैं, या जिसे अधिक स्वीकृति मिली हैं उस पर उनका प्रहारात्मक शब्द पड़ते हैं । प्रश्न यह है कि क्या ये शब्द वजनहीन और मात्र आक्रोश है ? क्या हमारी स्वीकृत मान्यताओं में खोखलापन नहीं है, हमारी आस्थाओं में अर्थहीनताएँ नहीं हैं । इस ढंग से जब हम अपने "स्व" को अपने समाज के "स्व" और संस्कृति के "स्व" से मिलाकर विश्लेषण करते हैं तो हमें अर्थहीन वातावरण का सही अन्दाज़ा मिलता है । ये कविताएँ उसी अयाचित वातावरण को ध्वंसित करने के उद्देश्य से लिखी गई हैं ।

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 93.
2. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 13.

नगरबोध का समाजशास्त्र

जगदीश चतुर्वेदी कस्बे से महानगर आया हुआ भोक्ता कवि हैं । महानगर तथा उस नगरीय यांत्रिक सभ्यता के बीच पिसते हुए आदमी का बिम्ब जगदीश चतुर्वेदी की कविता में उभरता है । जीवन की विसंगति का गहराता हुआ अवबोध नगरबोध की कविता की खासियत है । नगर जीवन की विषाक्तता में घुटन का अनुभव करना मानव की नियति ही रह गयी है -

"नगर में शोर है
विषैला धुआँ आँखों से निकल रहा है ।"[1]

शहरीकरणनेवास्तव में मनुष्य को, उसके वातावरण को विद्रूप बना दिया है । मानवीय संवेदनाओं को महत्त्वहीन बनाने में भी शहरीकरण का योगदान है -

"सारा का सारा शहर कोहराम से भर गया -
बच्चों के सुकुमार चेहरों पर अश्रुगैस के
बम पटक दिये गये ।"[2]

नगर-जीवन से परेशान आदमी का चित्र उभरने के साथ-साथ उस प्रदूषित वातावरण की ओर भी यहाँ सूचना मिलती है । पर्यावरण को प्रदूषित करने तथा मनुष्य की चेतना को प्रभावित करने में शहरीकरण का बड़ा हाथ है । परिवेश की पेचीदगी की झलक जगदीश चतुर्वेदी की कविता में सर्वत्र मिलती है । सब कहीं व्याप्त संत्रास की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 53.
2. वही, पृ. 81.

महानगर की निरापद शान्ति में बाधा डालनेवाले विषैले धुए का जिक्र किया है -

"भर गया है
ज्वालामुखी के मुखों का विषैला धुआँ
इस महानगर की निरापद शांति में
भाग रही हैं चीखती चिल्लाती
निरापद जीवन को असहाय गाँयों सी ढोती-
घरेलू औरतें
पानी में नाव चलाते बच्चे डूब रहे हैं भयभीत
निकल रही है अश्रु धार ।"[1]

वातावरण की भयावहता व्यक्ति के मन को झकझोरती है । इस अराजकता की हालत में व्यक्ति की परेशानी तथा विवशता का चित्रण सार्थक निकलता है । अपनी विवशता को टालने की कोशिश सहज है, यद्यपि यह व्यर्थता का परिचय देती है -

"मुझे ले चलो
इस खोखली नगरी से बहुत दूर
मेरी अस्थियाँ गल रही है
मेरी जिन्दगी उखड़ रही है
घुट रही है मेरी दम तोड़ती साँसें
मुझे उबकाई आ रही है ।"[2]

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 128.
2. वही, पृ. 54.

G5619

खोखलापन तथा उखड़ा-जीवन व्यक्ति के अस्तित्व की अनिश्चितता का द्योतक है । वातावरण के साथ अपने को समायोजित करने में व्यक्ति की असमर्थता उबकाई शब्द से स्पष्ट होती है । ऐसा माहौल ही व्यक्ति को दूर भागने को प्रेरित करता है -

"भागना चाहता हूँ इस जंगल से हर रात
इस निकृष्ट, नारकीय यंत्रणा से होना चाहता हूँ मुक्त
परेशान आँखों में बुन देना चाहता हूँ एक निडर दृष्टि
और जाँघों पर हिलनेवाले कमज़ोर शरीरों को मिट्टी में
झोंक देना चाहता हूँ ।"[1]

अपनी मुक्ति की बात कहकर कवि पलायन का एहसास देते नहीं । वे अपनी यंत्रणा तथा परेशानी से अलग होने का उपाय प्रस्तुत करते हैं । अपने बचाव के समान ही दूसरों की निडरता की आवश्यकता वे महसूस करते हैं । कमज़ोर शरीर को मिट्टी में झोंक देना असल में संगत लगता है क्योंकि ये उनके उद्देश्य में बाधक हैं । इस कपट नगरी में जीवन बिताना है तो बनना पड़ेगा मायावी पिशाच, कौटिल्य या अहिरावण जो सबकुछ का सामना चालाकी से करता है -

"मैं इस कपट नगरी में बनकर रहना चाहता हूँ मायावी पिशाच
या कौटिल्य
या अहिरावण ।"[2]

मायावी, पिशाच, कौटिल्य और अहिरावण जैसे की तरह

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 28.
2. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 88.

समीचीन है । जीवन की यंत्रणा की सही झाँकी उभारने में यह समर्थ है । घूरते नगर से संतप्त मन की अभिव्यक्ति मात्र दृश्य चित्र की कामना भर नहीं है । उसमें संत्रास की दिशाएँ भी मिलती हैं ।

मूल्य विघटन के प्रति असंतोष

आज जीवन में मूल्यों का कोई स्थान नहीं रहा । वह खोखले आदर्शों का वाहक बन गया है । यांत्रिक सभ्यता के प्रभाव से मनुष्य का आचरण यंत्रवत् बन गया है । व्यक्ति की महत्ता की अपेक्षा यंत्र को महत्व दिया गया है । मनुष्य तमाम सामाजिक तथा पारिवारिक संबंधों से कटुवाहट का अनुभव करता है । मूल्यविघटन के परिदृश्य को जगदीश चतुर्वेदी की कविता में अभिव्यक्ति मिलती हैं । "जगदीश चतुर्वेदी व्यक्ति के माध्यम से समस्याग्रस्त समाज को देख रहे हैं जो हर स्तर पर संबंधहीनता और मूल्यहीनता के दौर से गुज़र रहा है ।"[1] संबंधों और मूल्यों का विघटन आधुनिक समाज की नियति है । ऐसी हालत में सभी चीज़ें कवि को बेमानी लगती है -"उसे समाज या परिवार, प्रतिष्ठा या वैराग्य, अपमान या आदर सब चीज़ें एक सी बेमानी लगती हैं और वह इन्हें कोई अर्थ देने की बजाय निरर्थकता का एक चित्र उपस्थित कर देनेवाला चित्र मात्र मानकर अपने अर्जित काव्य-संसार द्वारा नया रूप प्रदान करने को कटिबद्ध दिखाई देता है ।"[2] कवि की यह कटिबद्धता उनके दायित्व का प्रमाण है ।

जीवन में पारिवारिक सौहार्द का ह्रास हो रहा है ।

---

1. लंबी कविता गतिशील यथार्थ की पहचान, डॉ. रत्नलाल शर्मा, पृ. 320.
2. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. पृ. 32.

परिवार का संकोच और सीमित-दृष्टि के विकास का द्योतक हो गया है । जीवन की इस त्रासदी को काव्यानुभव में व्यक्त किया गया है । व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का संबंध एक धोखा मात्र रह गया । संबंधों में कोई ऊष्मलता का अनुभव नहीं है । सबमें सार्थकता का बोलबाला है -

"परिवार और परिजन हमेशा सिखाते रहे ढोंग
और बढ़ती रही खीझ और रह गया अकेला और निरुपाय
स्वयं के बाल नोचता हुआ ।"[1]

संबन्धों की महीनता से जगदीश चतुर्वेदी अच्छी तरह परिचित हैं । अपने जीवनानुभवों तथा लोगों की बदली हुई मानसिकता की उपज है जगदीश चतुर्वेदी की कविता । नैतिक प्रतिमान सब बदल गये, नए-नए मूल्यों की स्वीकृति भी हुई । कवि महसूस करते हैं -

"माँ और बहिन और पत्नी और प्रिया में अब कोई अन्तर
नहीं दिखता है मुझे
कुलटायें देवियाँ नज़र आती हैं ।"[2]

संबंधों की पवित्रता का लोप आधुनिक समाज की एक प्रवृत्ति है । जगदीश चतुर्वेदी माँ, बहिन, पत्नी और प्रिया में कोई अन्तर नहीं महसूस करते हैं । इसमें अतिरंजना की मात्रा है । पर धनाश्रित विघटित समाज ने मूल्यविघटन को भी स्वीकृति दी है । मूल्यों के ऊपर मूल्यहीनता का आयोजन जब पड़ता है तो कुछ ठीक दीखता नहीं है । सब कुछ विपर्यस्त नज़र आता है । कुलटायें देवियों के रूप में विचरने की स्थिति मूल्यविघटन की चरम अवस्था है ।

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 17.
2. वही, पृ. 82.

स्वार्थी दुनिया का हर संबंध खोखला है । उसमें आत्मीयता का अभाव है । मुखौटा धारण किए हुए लोगों की स्वार्थोन्मुखी दृष्टि का संकेत कवि दे रहे हैं -

"यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं,
यहाँ तो सभी चेहरे बिखरे हैं स्वार्थों में
लोग उड़ाते हैं एक दूसरे का मज़ाक
बौद्धिकता की सीमाएँ ज़्यादा बोलने में है
हर आदमी शैतान नज़र आता है ।"[1]

हर आदमी की यह शैतानी आकृति परिवेश की यंत्रणाओं की अनिवार्य परिणति है । आदमी की आदमी से नफ़रत और धोंधे, गीदड़, अवसरवाद से लगाव इसी विसंगति का नतीजा है । मूल्य विघटन के प्रति असंतुष्ट व्यक्ति की मानसिकता की झाँकी यहाँ मिलती है ।

जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में प्रेम, संबंध आदि को तहस-नहस करने की तीव्र इच्छा प्रकट होती है । यह वास्तव में संबंधों में आए हुए बदलाव को सूचित करती है । आदमी आदमी की संवेदना को पहचानने में असमर्थ है । ऐसी अवस्था में इनसान की आवाज़ मात्र से ऊबकाई का आना स्वाभाविक है -

"इन्सान जिसकी आवाज़ से मुझे उबकाई आती थी
दोस्ती जिसके खूनी अन्दाज़ से मुझे खौफ होता था

---

1. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, प्र. सं. 1967, पृ. 77.

इश्क:
जिसकी बदसूरत शक्ल मैं ने डरावने खन्दर के
किविस्तानों में देखी थी ।"[1]

खूनी अन्दाज़ और बदसूरत शक्ल क्रमशः दोस्ती और इश्क के पर्याय बन गए । व्यक्ति को अपने समाज में रिश्तों की टूटन का अनुभव होता है । उसे बहुत अधिक तनाव भी झेलना पड़ता है । सामाजिक संदर्भ में व्यक्ति के इस तनाव को जगदीश चतुर्वेदी ने स्वर दिया है । वे प्यार को बेवकूफी की संज्ञा देते हैं -

"प्यार को
बेवकूफी की संज्ञा देने पर अपने चेहरे पर एक शांति
पाता हूँ और चील की तरह झपटते किसी शेर के सामने
जाकर द्वन्द्व करना चाहता हूँ ।"[2]

मूल्य विघटन से संत्रस्त कवि का असंतोष यहाँ प्रकट है । दिखावा तथा छल आदमी के सहचर बन गए हैं । इसी छल-कपट से कवि अपने को बचाते हैं -

"परे हट जाओ प्रदर्शन की बौनी हरकतों से मुझे धोखा
देनेवाले
दोस्त बनकर मेरी पीठ में खंजर भोंकनेवाले
मैं तुम्हें किसी भी आत्मश्लाघा का अंश नहीं दे सकता,
तुम एक बदनसीब, ठहरी हवा से कुचले हुए पत्ते हो ।"[3]

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 20.
2. वही, पृ. 17.
3. वही, पृ. 46.

व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का फासला बढ़ गया है और सब का लक्ष्य स्वार्थ लाभ है । कुचले हुए पत्ते के समान दोस्तों को मानना उसके साथ उनकी आस्थाहीनता का द्योतक है । मूल्यविघटन से असंतुष्ट कवि महसूस करते हैं -

"एक आग है जो बुझ गई है और राख में
दब गये हैं मर्यादाओं के ताबूत, अनुभूतियों के दरख्त
और समवेदना के कीटाणु ।"[1]

मर्यादा, अनुभूति और संवेदना मूल्यों के महत्व के निशान हैं । इनका राख में दब जाना आशा-आकांक्षा की समाप्ति को दर्शाता है । इस प्रकार बदलते हुए मूल्यों का जिक्र जगदीश चतुर्वेदी की कविता में हुआ है । परिवेश की टकराहट को लगातार झेलते रहने वाला ही मूल्य विघटन के प्रति चिन्ता प्रकट करता है । "समकालीन हिन्दी कविता के मूल्यविरोधी, ध्वंसशील और नकारू अन्दाज़ का चरम रूप जगदीश में ही मिल सकता है ।"[2] जगदीश चतुर्वेदी वास्तव में समय के साथ जुड़े कवि हैं । "जीवन दृष्टि, वैचारिक धरातल और रचना की अन्तःप्रेरणा में परंपरागत काव्य-दृष्टि से बिल्कुल अलग यह रचना अपने समय की उतनी ही बड़ी ज़रूरत है जितनी कि कोई भी रचना कभी रही हो या रह सकती है ।"[3] डॉ. विनय का यह कथन जगदीश चतुर्वेदी की कविता के सही मूल्यांकन का ही परिणाम है ।

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ.39.
2. समकालीन कविता की भूमिका, सं. विश्वंभरनाथ उपाध्याय व मंजुल उपाध्याय, प्र.सं. पृ.34.
3. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, सं. कमल किशोर गोयनका, प्र.सं. 1985, पृ.302.

विसंगति तथा अस्मिता का संकट

अकविता पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव पड़ा है । लेकिन प्रभाव की शुरूआत अकविता से नहीं हुई, बल्कि नई कविता भी अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित है । आधुनिक मानव की सबसे बड़ी समस्या अपनी अस्मिता की है । अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए उसे सदैव संघर्ष करना पड़ता है । आधुनिक जीवन की जटिल वास्तविकता तथा व्यक्ति की दयनीय हालत का साक्षात्कार अकविता के कवि जगदीश चतुर्वेदी की कविता में होता है । उनकी कविता में तमाम सामाजिक गतिविधियों से खोखलेपन का अनुभव करनेवाले व्यक्ति का रूप उभरता है । खोखलेपन का सामना करते हुए वह अपने अस्तित्व की रक्षा में पराजित होता है । पराजय के अनुभव से व्यक्ति व्यर्थताबोध से ग्रस्त हो जाता है -

"एक नन्हे बादल सा
जीवन हम जीते हैं
बिना बरसे ही
हम सबके सब रोते हैं ।"[1]

जीवन में कुछ हासिल न होने की बेबसी आधुनिक मनुष्य की पहचान है । जीवन की व्यर्थता का एहसास व्यक्ति को उसके परिवेश से अलगाता है । अपनी व्यर्थता का पूरा आभास कवि को उस समय होता है जब वे कहते हैं -

"हम में और तेली की टिकटी पर
चलनेवाले बैल में इतना ही अन्तर है

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 105.

कि हम,
चलकर भी कुछ पाते नहीं हैं
वह,
बँधी लीक पर घिसट कर
पा लेता है अपना एक निश्चित फल ।"[1]

व्यक्ति की दशा तेल की टिकटी पर चलने वाले बैल से बदतर है । बैल अपना निश्चित फल पा लेता है, परन्तु मनुष्य अपने जीवनकाल में अपने लक्ष्य तक पहुँचने में असमर्थ हो जाते हैं ।

अपनी पीढ़ी के दर्द को उसके सही संदर्भ में पहचानने का कार्य जगदीश चतुर्वेदी ने किया है । जगदीश चतुर्वेदी के काव्य में नयी पीढ़ी का दर्द पर्त-दर-पर्त नये लहजे में उभरता रहता है ।

नपुंसक, नामर्द, कमज़ोर जैसे विशेषण बीसवीं शती के मानव को बहुत ही संगत है । चेहरे से युक्त होने पर भी आज का मानव ज़बान रहित है -

"हम सब नपुंसक हैं
बीसवीं सदी की
कमज़ोर नामर्द औलादें -
जिनके चेहरे हैं, पर जबान नहीं.....
जबान नहीं ।।"[2]

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 52.
2. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 56.

प्रतिक्रिया-रहित, आभशप्त मानव की ओर इशारा करने के उद्देश्य से कवि ने ज़बानहीनता की बात की है । जीवन की अर्थहीनता का आभास व्यक्ति के मन को कैदी बनाता है । कवि अपने को एक अनाम कैदी मानता है, जो अथाह कुण्ड में डूब जाना चाहता है -

"मैं हूँ एक अनाम कैदी
और किसी की प्रतीक्षा करते करते मेरी उँगलियाँ चपटी
हो गई हैं
और मस्तक सिकुड गया है
मैं किसी अथाह कुण्ड में डूब जाना चाहता हूँ ।[1]

उँगलियों का चपटना और मस्तक का सिकुड जाना प्रतीकात्मक है । कवि के मानसिक तनाव को, उसके निरर्थकता बोध को यहाँ दिखाया गया है ।

लेकिन विरक्ति तथा व्यर्थता का संस्पर्श मिलने के साथ ही साथ जगदीश चतुर्वेदी ने सामाजिक अंतर्विरोधों को पहचानने की कोशिश अवश्य की है । वे एक ऐसे व्यक्ति के माध्यम से उस विडंबनापूर्ण माहौल का जिक्र करते हैं जो हर तरह टूटा-हारा है । अपनी सीमित सत्ता से कवि हमें अवगत कराते हैं -

"आवाज़ को रोकने कई मशीन गनें मेरे आसपास कसी गई हैं
आवाज़ को रोकने कई छुरियाँ मेरी गर्दन पर कसी गई हैं
पर न आवाज़ मरी न मेरा युद्ध
वह तो और फौलादी बनकर मेरी गर्दन पर शिकंजा कसता है

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 71.

काले नाग सा अपने अगणित फन लिये
मुझे चाटता है, काटता है, डसता है ।"[1]

कवि ने समाज और मनुष्य की इन विडंबनाओं को नकारा नहीं है, उन्हें अपनी रचना का आधार बनाया है, उसके अनुभव इन्हीं विडंबनाओं की देन है, उसका तीखापन उन्हीं से पैदा हुआ है । समाज के अन्तर्विरोधों की पहचान और उनका रेखांकन चतुर्वेदी की कविताओं को सार्थक बनाता है । इस प्रकार जगदीश चतुर्वेदी की कविता अस्मिता की तलाश से होकर सामाजिक गतिविधियों का सही बयान देती है ।

अस्तित्ववादी विचारधारा और मृत्युबोध

मृत्युबोध जगदीश चतुर्वेदी की कविता में कवि-संवेदना के प्रमुख तत्व बनकर प्रस्तुत हुआ है । तमाम इच्छाओं को दबाकर मृत्यु की प्रतीक्षा करनेवाले व्यक्ति का रूप उनकी कविता में उभर आता है -

"मैं ने अपनी तमाम इच्छाओं को खोपड़ी से निकालकर
तलुओं में
दबा लिया है और किसी अनिश्चित तिथि की प्रतीक्षा में
बूढ़े सर्प सा अपनी मृत्यु को बाट देख रहा हूं ।[2]

जीवन की सारहीनता व्यक्ति को सोचने को विवश करती है । जीवन का

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 12.
2. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 20.

लक्ष्य धुंधला पड़ जाता है तो लगातार मृत्युबोध से व्यक्ति ग्रस्त हो जाता है -

"मैं नीचे के खड्ड में टूटती अपनी बोटियों पर
उगा लूँगा एक नया पहाड़
और करूँगा मृत्यु का इन्तज़ार ।"[1]

मृत्यु को स्वीकारने में उत्सुकता प्रकट करने वाले कवि ने पंजे बढ़ाने वाली मृत्यु का चित्रण अकाल मृत्यु" नामक कविता में किया है -

"गोदडों की आवाज़ें बहुत सहमी सी आती हैं
गलों में होती है कफ की घरघराहट
मौत पंजे बढ़ाती है ।"[2]

मृत्युबोध अस्तित्व संकट का एक हिस्सा बनकर प्रकट हुआ है ।

राजनीतिक विसंगतियाँ

प्रजातंत्र में हम सुरक्षित होने का स्वप्न देखते हैं । फिर यहाँ भी हमारी सत्ता के नगण्य होने की बात सत्य साबित होती है । इस नगण्य सत्ता तथा सत्ताधारियों की भ्रष्टाचारिता व्यक्ति की पराधीनता को प्रश्रय देती है । अगर व्यक्ति इस विसंगत परिवेश से मुक्ति का उपाय ढूँढ लेने की कोशिश करता है तो उसे उस सचाई का सामना करना पड़ता है -

"युद्ध जीतने के लिए दिमाग ज़रूरी है
और दिमाग के लिए एक शांतिर का स्वास्थ्य

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 62.
2. वही, पृ. 29.

और स्वास्थ्य के लिए नियमों में बँधना ज़रूरी है ।
पर सारे नियम इस देश में केवल कुछ लोगों के
स्वार्थ के अस्त्र है ।"[1]

सत्ताधारियों के स्वार्थ की पुष्टि वास्तव में नियमों के द्वारा होती है । साधारण लोग उनके स्वार्थ की पूर्ति के सिलसिले में तुच्छ है । "चतुर्वेदी जी की कविताओं में एक गहरी बेचैनी और तड़प है, जो उसके भीतर स्वातंत्र्योत्तर भारत की दशा देखकर उत्पन्न हुई है ।"[2] डूबते इतिहास का गवाह" की कविताओं की समीक्षा करते हुए नन्द किशोर नवल का यह कथन जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं के सही मूल्यांकन का नतीजा है ।

राजनीति की ओर से जगदीश चतुर्वेदी इसीलिए अपना मुँह मोड़ लेता है कि वह खोखलेपन का ही पर्याय बन गयी । व्यवस्था का निर्णय लोगों की भलाई को वरीयता नहीं देता । जनतंत्री-व्यवस्था का हर एक कार्य-कलाप लोगों को चौंकानेवाला है । परन्तु व्यक्ति इससे परिचित हो जाता है तो बिना किसी शिकायत के, बिना किसी हैरानी के उसे सहज मानकर चुपचाप स्वीकारता है -

"शहर सोता है चुपचाप
कुछ नहीं होता है
सुबह अखबार की सुर्खियों से
पता चलता है

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 13.
2. समीक्षा, अक्तूबर-दिसंबर 1981, पृ. 93.

रात एक बड़ी मीटिंग हुई थी।
और सरकार बदल गई है ।"[1]

राजनीति की विद्रूपता का सही अंकन जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में हुआ है । चारों ओर की अस्वतंत्रता की हवा से व्यक्ति का व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है । कीचड़ में "लथपथ विदूषक" नामक कविता में कवि अपनी अस्वतंत्रता तथा नगण्य अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं, जो जन्म से ही उनका साथी है -

"मैं एक ऐसी सल्तनत में पैदा हुआ था जिसके चारों
ओर पहरा था - तलवारों और तोपची और बल्लमबाज ।
मेरी आँखों पर पैदा होते ही कनटोप चढ़ा दिया गया
एक अरसे तक मेरी दृष्टि कैद रही एक जंगल
में । काली कोठरी की सुराख से केवल वही मेरा अस्तित्व
था - मेरा संसार, मेरे सोचने और जीने की परिधि ।"[2]

सभी प्रकार से अस्वतंत्रता का अनुभव करनेवाला व्यक्ति सोचता है कि साहस के साथ अन्याय से भिड़ने की शक्ति किसी के पास नहीं है। सब चुप्पी साधते हैं -

"किसी भी गर्दन को सीधा तना देखने के लिए पिछले
कई वर्षों से तरस रहा हूँ - मर्दों के कन्धे हैं कि
उठते ही नहीं । मात्र चुप्पी है और एक ज़हरीला

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 69.
2. वही, पृ. 18.

सर्प, जो लोगों की कमर से लिपट कर चौखट पर
फन पटकता है ।"[1]

लोगों को समय के दबाव की सूचना देने के साथ कवि यहाँ उनकी प्रतिक्रिया-विहीन आदत के प्रति अपनी अरुचि प्रकट करते हैं । उनकी दृष्टि परिवेश की विसंगति का सम्यक् अवलोकन करती है -

"कोई नहीं सुनता मेरा आर्तनाद
कोई नहीं देखता मेरी पसलियों में रिसते खून का
असमय सूखते जाना
मेरी आँखों में एक मृतक की परछाई तैर रही है
और मेरी कनपटी में एक खूँखवार किसी की जान लेने को
आतुर खुनी पैदा हो गया है
जो सुरक्षा में कत्ले-आम कर देने की अन्तिम इच्छा रखता है।"[2]

व्यक्ति जगदीश चतुर्वेदी की कविता की प्रमुख इकाई है । व्यक्ति की समस्याओं को परिवेश-सहित प्रस्तुत करने का कार्य उनकी कविताओं में हुआ है ।

सर्वनाश की आकांक्षा

जगदीश चतुर्वेदी की कविता में एक ओर विद्रोह का तीखा स्वर बुलन्द है तो दूसरी ओर एक प्रकार की उदासी तथा निस्पंदता का

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 64.
2.

माहौल है । अभी तक अनवरत लड़ाई की घोषणा करनेवाला तुरन्त ही "तरकस न खींचने" का शपथ लेता है । इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वे अपनी विद्रोही चेतना को नकारते हैं । कवि की इस उदासी के पीछे वास्तव में उनकी विद्रोहात्मकता ही काम करती है । वास्तव में यह कवि का मौन आक्रोश है, प्रतिशोध की भावना है -

"मैं रहूँगा मौन और निष्पंद-नहीं करूँगा यह,
नहीं खींचूँगा तरकस..... एक शून्य में जीता हुआ
कर रहा हूँ महानाश की प्रतीक्षा, नियति का काला,
पत्थर बनकर चुपचाप निठल्ला और उदास ।"[1]

सभी दिशाओं से घिरा आदमी विघटन का अनुभव करता है । इसी वजह से ही जगदीश चतुर्वेदी तमाम यात्राओं को दुर्घटना में बदलने की चाह प्रकट करके अपनी विनाशेच्छा को बिना किसी हिचक के घोषणा करते हैं -

"मैं तमाम यात्राओं को दुर्घटना में बदलना चाहता हूँ
× × × ×
मैं चाहता हूँ विनाश
इन कीड़ों से मानव-पिंडों के लिए मेरे मन में -
कोई दया नहीं ।"[2]

व्यक्ति का मन अधिक निर्मम हो गया है । विनाश की आकांक्षा एक तरह के नयेपन की सूचना देती है, जो सबको परिवर्तित करता है । सर्वनाश की

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ.48.
2. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 17.

इच्छा से वे लिखते हैं -

"मैं गलियों में मरे चूहे फेंक दूँगा ताकि फैले प्लेग और महामारी
नदियों में डाल दूँगा काले बुखार के कीड़े
मेरा दस्युमन डुबा देगा लंगरों पर सधे हुए जहाज़ों को
नहीं पैदा होगा कोई कोलम्बस
किसी कुंआरी या अविवाहिता की कोख से ।"[1]

प्लेग, महामारी और बुखार फैलाने तथा जहाज़ों को डुबाने की बात मौजूदा हालात को समाप्त करने की इच्छा से की गई है ।

जगदीश चतुर्वेदी का रचना-संसार वर्तमान जीवन का यथार्थ संसार है । उनकी आक्रोशी मुद्रा में वास्तविकता की भी झलक है । जगदीश चतुर्वेदी संवेदनशील व्यक्ति है । समय की धड़कन को संवेदनशील आदमी ही समझ सकता है । अपने समय के सत्य को तलाशने और समझने के माध्यम के रूप में जगदीश चतुर्वेदी की अकविताओं को देखा जा सकता है तथा उसकी प्रासंगिकता है ।

जगदीश चतुर्वेदी की कविता पर प्रायः यह आरोप लगाया गया है कि वह व्यक्तिवादी है । इस कथन की प्रामाणिकता पर विचार करें तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी कविता में व्यक्ति का महत्व है । व्यक्ति की स्वतंत्रता पर वे अधिक बल देते हैं । पर वे व्यक्तिवादी कभी

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1981, पृ. 54.

नहीं है । उसकी चिन्ता का विषय समाज है, समाज की अनहोनी स्थिति है । वे कविता को वैयक्तिक रचना-प्रक्रिया मानते हैं । उनका कहना है "इस भयावह काव्य का नियन्ता होने के लिए जिन अनुभवों या तटस्थ निर्ममताओं से मेरे कवि को गुज़रना होता है, उनका विश्लेषण मेरे अन्तरंग जीवन तथा चिन्तन के पर्यवेक्षण के बिना असंभव ही है ।"[1] व्यक्ति का समाज से कटकर कोई अस्तित्व नहीं है । वह अन्ततोगत्वा समाज की ही इकाई है । उसका अनुभव समाज का ही अनुभव है ।

अकवि श्लील-अश्लील के बीच कोई विभाजन-रेखा नहीं खींचते हैं । जगदीश चतुर्वेदी की कविता पर अश्लीलता का आरोप भी प्राय: लगाया गया है । अनैतिक घोषित किये जानेवाले सभी कार्यकलाप को बुर्जुवा वर्ग अपने अभिजातत्व की रक्षा के लिए छिपकर करते हैं । पर वह अश्लील नहीं है । तब उस पर लिखा कैसे अश्लीलता बनता हैं ? जगदीश चतुर्वेदी सेक्स को अश्लील नहीं मानते । वे कहते हैं -"तमाम कटुताओं, विसंगतियों तथा आवेग जन्य व्यापारों का निर्धारण सेक्स द्वारा ही होता है ।"[2] जगदीश चतुर्वेदी का यौनगत-विद्रोह सभ्यता, संस्कृति के प्रचलित मापदंडों पर एक आघात भर है ।

जगदीश चतुर्वेदी की अकविताएँ स्वातंत्र्योत्तर भारत के पश्चात् के मोहभंग को व्यक्त करती हैं । लेकिन मोहभंग को व्यक्त करने का उनका ढंग विवादास्पद नहीं है । यद्यपि अवसाद का स्वर यत्र-तत्र उनकी

---

1. इतिहासवन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1970, पृ. 1.
2. दस्तावेज़, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1980, पृ. 122.

कविताओं में उपलब्ध है फिर भी मूलस्वर विद्रोह का है । विध्वंस को अख्तियार करने के पीछे सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगति का व्यापक परिदृश्य है । जीवन की दिशाहीनता को दिशाहीनता के औजार से उन्होंने व्यक्त किया है । स्वीकृत कवितारीतियों को तजकर उन्होंने अकविता को अलग स्वरूप प्रदान किया है । उस नए स्वरूप में पूरे दशक की चीख और चिल्लाहट, विघटन की तमाम दिशाएँ अभिहित हैं । अकविता पर इतने आरोप और प्रत्यारोप लगे हैं कि उसके वास्तविक परिदृश्य को अनदेखा किया गया । जगदीश चतुर्वेदी की कविता, अपने स्वत्वान्वेषण के बावजूद समय की चिन्ता को व्यक्त करती है ।

अध्याय चार

जगदीश चतुर्वेदी की अकवितेतर परवर्ती कविताओं का अध्ययन

समकालीन कविता को गति देने में अकविता का अपना मूल्यवान योग रहा है । अकविता का एक दशकीय-दौर सहज ही समाप्त हो जाता है । उस समय जगदीश चतुर्वेदी की अपनी काव्य मानसिकता में बदलाव के चिह्न देखने को मिलते हैं । संपूर्ण नकार से धीरे-धीरे साकारात्मकता की ओर वे उन्मुख होते हैं । यह परिवर्तन उनकी काव्य-यात्रा के जैविक विकास का द्योतक है । उनका कविता-संग्रह "डूबते इतिहास का गवाह" की कुछ कविताएँ इस बदलाव को सूचित करती हैं । तिरस्कार साठ के बाद की कविता की रूढ़िवादिता के विरोध में प्रकट किया गया भाव है । तिरस्कार एक आत्यन्तिक भाव होते हुए भी सकारात्मक होने की भी आवश्यकता है । यह भी समय के सरोकार का ही परिणाम है । अतः जगदीश चतुर्वेदी को अकविता के कटघरे में बन्द कवि के रूप में देखने की आवश्यकता नहीं, उनमें दर्शित परिवर्तन को रेखांकित करना भी ज़रूरी है -

"समय बदलता है तो उम्र के साथ
आँख भी बदल जाती है ।"[1]

आँख का बदल जाना समय के साथ सरोकार का सूचक है । अकविता के दौर में ईश्वर, धर्म आदि को अर्थहीन साबित करनेवाले कवि परवर्ती कविता में सबके प्रति आस्था प्रकट करते हैं -

"मैं जीवन का अर्थ खोजने
पुस्तकों
ब्रह्मांड
ईश्वर और कठोपनिषद के सूत्रों से उलझता रहा ।"[2]

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 90.
2. वही, पृ. 69.

"अज्ञात की खोज" की इन पंक्तियों में कवि की सकारात्मकता का परिचय मिलता है । इसी सकारात्मक – दृष्टि के कारण ही कवि शान्ति की तलाश करते हैं –

"वह कृष्ण की एक पंक्ति गुनगुनाता है
उसे क्राइस्ट का शव सूली से उभरता नज़र आता है
सुकरात का चेहरा उसकी आँखों में तैर जाता है
और वह, तमाम चीज़ों का एक ही समाधान पाता है
गाँधी के दो अन्तिम शब्द
शान्ति..... शान्ति..... शान्ति "[1]

गाँधीजी की विचारधारा के महत्व को कवि स्वीकारते हैं । कवि के आशावादी-स्वर की अनुगूँज परवर्ती कविता की विशेषता है –

"फिर हवा में बिखरने लगे खुशबू कुम्हलाये फूल
फिर फिजाओं में घिर आया वसंत
हरी वादियों से हट गया ठहरा हुआ काला सूर्य
सुर्ख आसमान के नीचे उड़ने लगी अबाबील
बादलों की पर्तों में तैरने लगी सफेद नाव ।"[2]

हवा में खुशबू का बिखरना, फिजाओं में वसन्त का घिर आना, काले सूर्य का हट जाना, अबाबील का उड़ना, सफेद नाव का दिखाई देना जैसे शब्द-खंडों का प्रयोग उनके आशावादी स्वर का परिचय देता है ।

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 76.
2. वही, पृ. 84.

इसके अतिरिक्त इस परिवर्तन को प्रमाणित करनेवाली रचनाएँ हैं "सूर्यपुत्र", "नए मसीहा का जन्म" और लंबी कविता 'इतिहास के अन्धेरे में वसन्त की तलाश" ।

सूर्यपुत्र

"सूर्यपुत्र" कर्ण के चरित्र को आधार बनाकर लिखा गया मिथक काव्य है । इसमें कर्ण की कथा चौदह सर्गों में कही गई है । कर्ण महाभारत का सबसे विद्रोही चरित्र है । जगदीश चतुर्वेदी ने कर्ण को उपेक्षित मानव के प्रतीक-रूप में स्वीकार किया है । कर्ण एक ऐसा चरित्र है, जो महान् गुणों से युक्त होकर भी जीवन-भर अवहेलना तथा अपमान सहता रहा । उसकी महत्ता तथा गुणों को अभिजात-वर्ग ने सूतपुत्र कहकर ठुकराया ।

"सूर्यपुत्र" की कथा पौराणिक अवश्य है । कर्ण की कथा पुराण में भी त्रासद-जन्य है । वर्तमान संदर्भ में उस त्रासदजन्यता की गहराई बढ़ती है । इस तरह अतीत के माध्यम से वर्तमान का सार्थक अंकन हुआ है । अकविता का उन्नायक तथा प्रवर्तक कवि जगदीश चतुर्वेदी ने कर्ण को आधार बनाकर ऐसा एक मिथक-काव्य लिखा क्यों ? इसका कारण क्या हो सकता है ? कवि ने "सूर्यपुत्र" की भूमिका में लिखा है - "महाभारत के एक प्रमुख पात्र कर्ण को मैं ने इस काव्य का मूल स्रोत बनाया है और उसके जीवन की यातना और संघर्ष को आज के मनुष्य के द्वन्द्व और विसंगति से अनुप्राणित कर एक नये भावबोध से संपृक्त करने का प्रयास किया है ।"[1] विद्रोही-चेतना जगदीश चतुर्वेदी की

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 7.

मूलमुद्रा है । "सूर्यपुत्र" की रचना वास्तव में इस मानसिकता का परिणाम है । पहले जिस कवि ने अतीत को नकारने की चेष्टा की है, यहाँ यह सूचना दी है कि अतीत से पूरी तरह विच्छिन्नता असंभव है । उनके अनुसार कर्ण आधुनिक मनुष्य की दुश्चिन्ताओं का वाहक है । सामयिक संदर्भ के अनुकूल महाभारत-कथा में बदलाव लाने का कार्य ही उन्होंने किया है । कथा अतीत की है, पर संदर्भ वर्तमान का है । इसलिए इस काव्य में वर्तमान ही प्रमुख है ।

आधुनिक मानव का जीवन संघर्षों से घिरा है । अपने अस्तित्व की चुनौती का सामना करने को वह विवश है । जगदीश चतुर्वेदी का कहना है -"मैं महाभारत को भारतीय मानस के अन्तर्द्वन्द्व और अनवरत-संघर्ष का प्रतीक मानता हूँ ।"[1] इस अन्तर्द्वन्द्व और अनवरत-संघर्ष को वाणी देने का कार्य जगदीश चतुर्वेदी ने "सूर्यपुत्र" में किया है । दरअसल यह उनके बदले हुए भावबोध का सूचक है । इस कथा को रचने के पीछे कोई पुराण-मोह नहीं है । मनुष्यकेन्द्री दृष्टि के विकास के रूप में इसे देखा जाना चाहिए, जो समकालीन ही है ।

कर्ण के चरित्र को आधार बनाकर हिन्दी में अनेक काव्य रचे गये, जिनमें उल्लेखनीय हैं -लक्ष्मीनारायण मिश्र का "सेनापति कर्ण", आनंद कुमार का "अंगराज", केदारनाथ मिश्र प्रभाकर का "कर्ण" और रामधारी सिंह दिनकर का "रश्मिरथी" ।

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 7.

"सेनापति कर्ण" एक अधूरी रचना है, जिसमें कर्ण के चरित्र का विकास नहीं हुआ है । "अंगराज कर्ण" कृष्ण, पाण्डव तथा पांचाली के चरित्र-हनन द्वारा कर्ण के महिमा मंडित चरित्र को उज्ज्वल बनाने का प्रयास है । कर्ण की दानवीरता और युद्ध-कौशल को केदारनाथ मिश्र प्रभाकर ने अपनी रचना "कर्ण" में चित्रित किया है । कर्ण के परमदानी रूप की अभिव्यक्ति "दानवीर कर्ण" की विषयवस्तु है । इन रचनाओं में महाभारत का वह चरित्र ज्यों का त्यों अभिव्यक्ति पाता है । लेकिन कर्ण के चरित्र में आधुनिक जीवन की संश्लिष्टताओं एवं उनकी संभावनाओं का समावेश है ।

"रश्मिरथी" में कर्ण के चरित्र के उद्धार का सफल प्रयास है । दिनकर जी की स्वीकृति है -"यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है । अतएव यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्रभारती के जागरूक पाठकों का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हज़ारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा रहा है ।"[1] दिनकर जी मानवतावादी है । कर्ण के माध्यम से मानवीय गुणों को महत्व देने तथा कुल-जाति के भेद-भाव को मिटाने की युगीन मांग को दिनकर जी ने "रश्मिरथी" में वाणी दी है ।

"सूर्यपुत्र" का कर्ण आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है तमाम जटिलताओं के बीच में जगदीश चतुर्वेदी ने कर्ण की परिकल्पना की है । "उन्होंने कर्ण को एक अन्त:संघर्ष को भोगनेवाले निरासक्त योद्धा के रूप में चित्रित करते हुए आज के सामयिक, राजनैतिक ऊहापोह के बीच पिसते हुए जन की बेचारगी

---

1. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, प्र.सं. 1960, पृ. 3.

को ही वाणी दी है ।"[1] इस प्रकार कर्ण हमारे सामूहिक अवचेतन का अंग बन जाता है अर्थात् उसका मिथकत्व और प्रासंगिक हो जाता है । कर्ण के चरित्र के इस मिथकीय आयाम का उल्लेख कवि ने "सूर्यपुत्र" की भूमिका में किया है - "वस्तुत: इस काव्य-कृति के द्वारा मैं ने वेदव्यास की कल्पना को एक प्रतीकात्मक अर्थ देने का प्रयास किया है ।"[2]

कुन्ती के आह्वान से "सूर्यपुत्र" की शुरुआत होती है । "सूर्यपुत्र" की कुन्ती पूर्ण-यौवना है । वह अपने अंगों की ललक सूर्य तक पहुँचाने की चाह प्रकट करती है -

"यह सूर्य का रक्तिम पिंड, यह जाज्वल्यमान नक्षत्र
मुझे पुकार रहा है ।
मेरी बाँहों में क्यों आ रहा है भागीरथी का ज्वार
क्यों हो रही है यंत्रणा ?
मुझे बुलाना होगा तुम्हें दिनेश
अपने अंगों के आह्वान की ललक
तुम तक पहुँचानी होगी ।"[3]

कुन्ती के आह्वान की यह खुली अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है । कुन्ती आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है । वह सूर्य का अंगीकार चाहती है, उसपर अपने कौमार्य का समस्त स्नेह उंडेलना चाहती है । कुन्ती की ललक तथा आह्वान से सूर्य प्रभावित होता है । वह सोचता है -

---

1. जगदीश चतुर्वेदी: विवादास्पद रचनाकार, सं. कमल किशोर गोयनका, प्र. सं. 1985, पृ. 388.
2. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 8.
3. वही, पृ. 1.

"इतना आत्मीय संबोधन तो सौरमंडल में किसी ने
आज पर्यन्त
मुझे अपने स्नेह से आप्लावित करने
नहीं उच्चरित किया अपने श्रीमुख से ।"[1]

"सूर्यपुत्र" का सूर्य आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधि है । "आह्वान" सर्ग में कुन्ती का आह्वान है । "सिद्धि" सर्ग में कुन्ती-सूर्य-मिलन का वर्णन है । कुन्ती से मिलने के बाद व्यस्तता का बहाना करके सूर्य चला जाता है ।

"निर्वासन" सर्ग में कुन्ती की आधुनिक नारी की सशक्त झाँकी प्रस्तुत हुई है । सुख के विरोध में बनाये गये सामाजिक नियम, संहिताएँ सबको वह ठोकर मारना चाहती है । इसके लिए वह सूर्य का सहारा चाहती है -

"सुख के विरोध में बनाये गए ये सामाजिक नियम
ये संहिताएँ
यह प्राणघातक प्रणाली
इनको मैं ठोकर मार सकती हूँ दिनेश
यदि तुम सहारा दो ।"[2]

कुन्ती और सूर्य के मिलन-संदर्भ को पर्याप्त नवीनता के साथ जगदीश चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किया है ।

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 3.
2. वही, पृ. 16.

कुन्ती कर्ण को स्वीकारने को तैयार हैं । परन्तु वह सूर्य का आश्वासन चाहती है । कुन्ती के मानसिक संघर्ष का सहज अंकन यहाँ हुआ है । एक असहाय माँ का रूप कुन्ती के चरित्र में उभर आता है । अपने बच्चे को त्यागने की विवशता उसे कचोटती रहती है । उसकी पीड़ा इतनी अधिक बढ़ गई कि वह पागलपन की स्थिति तक पहुँच जाती और सूर्य को कोसने भी लगती । बच्चे से विदा की वेला का अंकन जगदीश चतुर्वेदी ने पूरी मार्मिकता के साथ किया है -

"लिपट गई पागल सी आधी सखी से
संपूर्ण शिशु से
चुम्बन और चुम्बन और चुम्बन और मौनालाप
अश्रु की अनवरत धार में
भोग गया जननी-सुख
और शिशु-शरीर ।"[1]

कुन्ती की विवशता का यह चित्रण मात्र उसे दोषी होने से बचाता है ।

"पुनर्जन्म" सर्ग में राधा-अधिरथ का राजसी ठाट-बाट से पुत्र-जन्म मनाने का वर्णन है ।

कर्ण की अनन्य एकाग्रता तथा अंग-संचालन से ब्रह्मर्षि को लगा कि कर्ण स्वयं सूर्यांश है । "प्रवंचना" में कर्ण के शौर्य की घोषणा है । सेना का

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 22.

संचालन तथा भूमिखंड का नायक बनने की उसकी ताकत देखकर परशुराम उसे अपने आश्रम ले जाते हैं । वे चाह रहे थे कि उसे युद्ध कला सिखायें और अजेय वीर बनायें । उन्हें केवल अपने प्रिय शिष्य की चिन्ता थी । अपना शिष्यत्व गुप्त रखने का उपदेश देकर परशुराम जाते हैं -

"चले गए परशुराम पलटकर निहारने
देकर सलाह
गुप्त रखने की, शिष्यत्व ।"[1]

यहाँ कवि ने परशुराम से शिष्यत्व पाने की मौलिक उद्भावना की है । कर्ण के अडिग आत्मविश्वास का परिचय भी इस सर्ग में उपलब्ध है ।

अर्जुन को सर्वबली घोषित करने पर कर्ण के विश्वास ने उसे चुप बैठने न दिया । अर्जुन द्वारा अपमानित करने और कृपाचार्य द्वारा उसके समर्थन पर कर्ण उद्विग्नता का अनुभव करता है । कर्ण की मानसिक-व्यथा का बहुत मार्मिक अंकन "विरति" सर्ग में हुआ है । कर्ण को अपनी क्षमता तथा शक्ति पर विश्वास था । उसके आत्मविश्वास को चकनाचूर करने का कार्य तथाकथित अभिजात वर्ग ने किया है । कवि ने यह घोषित करने का प्रयास किया है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति को कितनी अथाह मानसिक व्यथा प्रदान करती है -

"लगने लगा कि सभी करते हैं आक्षेप
कौन है मेरे पिता यह न बता सकता मैं
केवल यह सत्य है कि मैं हूँ एक सारथिपुत्र
मेरी नसों में मात्र शूद्रों का खून है ।"[2]

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 32.
2. वही, पृ. 51.

अकविता के दौर में जिस कवि ने सभी संबंधों को खोखला मानकर उससे नाता तोड़ने की बात की है, यहाँ कर्ण के मानसिक संघर्ष तथा अकेलेपन की भावना को सहजता से अभिव्यक्त किया है । एकाकी जीवन की भीषणता तथा विवशता से जगदीश चतुर्वेदी खूब परिचित हैं । लेकिन उनकी यह विवशता तथा कर्ण की विवशता में अन्तर है । कर्ण को जीवन भर अपमान सहकर जीना पड़ा । दुर्योधन ने उसे अंगराजा घोषित किया । उसे अपार वैभव मिला, पर कर्ण सदैव उद्विग्न रहता था -

"किन्तु कर्ण रहता था उन्मत्त और खोया सा
मानो सुलझाता हो कोई अन्तस रहस्य
या कोई ऐसी पहेली अनबूझ
रखती थी उद्विग्न सदा
उसके तन मन को ।"[1]

अपनी इस उद्विग्नता के होते हुए भी कर्ण बिलकुल ही आलसी नहीं । वह अपने कर्तव्य की निष्ठा से पूर्ति करता रहा ।

गहरी मानसिक व्यथा सहकर भी कर्ण एक आदर्श राजा की भूमिका निभाता रहा । उसने अनुभव किया कि जाति-पाँति, वर्ण-व्यवस्था सब खोखली हैं । उसको लगा कि मानसिक शान्ति की प्राप्ति धन से नहीं होती, इसके लिए आन्तरिक स्नेह तथा पवित्र आश्वासन की आवश्यकता है -

"फैला दूँगा सद्भाव सारे ही राज्य में
त्याग दूँगा वैभव, समृद्धि और राजपाट
मिथ्या हैं ये आकर्षण

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 53.

अगर न दे सका शिशुओं को दुलार
दे न सका दुखियों को सुख
और निर्धनों को ऐश्वर्य ।"[1]

कर्ण के प्रजाहितैषी तथा आदर्श राजा के रूप की प्रस्तुति द्वारा कवि ने भेदभाव को जन्म देनेवाली सामन्ती विचारधारा को झकझोर कर मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है । मूल्यों की तलाश तथा उनकी महत्ता की स्वीकृति कवि की बदली हुई मानसिकता को सूचित करती है । कर्ण के प्रजाहितैषी, दानी रूप के द्वारा कवि ने इस मिथक का समाज-सापेक्ष प्रयोग किया है ।

कृष्ण का दूतकर्म, दुर्योधन का मिथ्या-अहं तथा युद्ध की घोषणा का वर्णन "प्रतिहिंसा" सर्ग की विशेषता है । कृष्ण सहित सब लोग इस बात से अवगत है कि कर्ण की अजेय-शक्ति पर दुर्योधन का अटूट विश्वास है । कर्ण को लगा कि सबकुछ थोथा है, केवल युद्ध ही सत्य है -

"थोथे लगते थे वृद्ध पुरुषों के नीति-वचन
गुरु द्रोण के शान्ति - सन्देश
केवल सत्य लगता था युद्ध एक ज्वालामय
जिसको प्रज्ज्वलित करता दुर्योधन
लगता था अभिन्न अंग ।"[2]

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 59.
2. वही, पृ. 69.

अपना अपमान कोई भी सहन नहीं कर सकता । कर्ण ने अपनी सहिष्णुता का बहुत परिचय दिया । पर ज्वालामुखी का मुख किसी ढक्कन से ढका नहीं जा सकता । उचित अवसर पाकर प्रतिशोध की आग कर्ण के अन्दर प्रज्ज्वलित होती है । अर्जुन ने सूतपुत्र कहकर और द्रौपदी ने सारथीपुत्र कहकर उसे अपमानित किया तो वह कुछ भी भूल नहीं पाता है । "सूतपुत्र होने का सामाजिक अभिशाप, अपमान एवं निर्वासन की आत्मग्लानि, अर्जुन के अभद्र व्यवहार से अपमानित होने की भावना आदि ऐसे जीवंत प्रसंग हैं, जो आधुनिक परिवेश में ओछी जाति की नियति को ही उद्घाटित करते हैं ।"[1] आभिजात समाज व्यक्ति के महान् गुणों की अपेक्षा उसके कुल तथा धन-दौलत को महत्व देते हैं ।

जो रहस्य अपने अन्तर्मन को सदैव सालता रहा, उसे अपने पुत्र को बताकर कुन्ती खुद आश्वस्त हो जाती है । "प्रतिश्रुत" सर्ग कुन्ती तथा कर्ण की बातचीत को प्रस्तुत करता है । युद्ध से विमुख हो जाने का उपदेश कुन्ती कर्ण को देती है । लेकिन कर्ण अपने निर्णय पर अडिग है -

"युद्ध तो निश्चित है और पक्ष भी है सुनिश्चित
दुर्योधन के हितार्थ
कम से कम दिया उसने मुझे बन्धु का स्नेह
दी मुझे प्रतिष्ठा एक राजकुल पोषित सी ।"[2]

दुर्योधन के प्रति कर्ण की मित्रता वास्तविक है । उसकी मित्रता में आस्था है । कर्ण का हर आचरण प्रभावात्मक है ।

---

1. नई कविता : कथ्य एवं विमर्श, डॉ. अरुण कुमार, पृ. 312.
2. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 77.

"निष्क्रमण" सर्ग में कर्ण के शौर्य का भीष्म द्वारा तिरस्कार तथा कर्ण की प्रतिज्ञा का वर्णन है । पांडवों की सेना का ध्वंस केवल तीन दिन में कर सकने के कर्ण के निर्णय को भीष्म ठुकराता है तो कर्ण को बहुत धक्का सा लगता है । भीष्म से वह कहता भी है -

"मेरे शौर्य का अपमान किया है आप ने बिना परीक्षा के
बिना परखे मेरे बचनों की सार्थकता
मैं रहूँगा केवल एक दर्शक जब तक है
आप सेनापति ।"[1]

मानसिक आघात सहकर भी कर्ण अपने चरित्र की दृढ़ता का परिचय देता है । कर्ण के मानसिक द्वन्द्व को "अपराजेय" सर्ग में अभिव्यक्त किया गया है । घोर अपमान तथा गहरी मानसिक व्यथा सहकर भी कर्ण अपनी मित्रता को नहीं भूलता । अतः वह दुर्योधन के साथ-देने का वादा करता है -

"मैं तो सदैव ही प्रस्तुत रहा
बनने को सहभागी अपने प्रिय मित्र का ।
समर्पित हूँ तुम्हारे लिये
यदि कोई उत्कट इच्छा है जीवन की
तो निश्चय ही यह है
कि काम रणांगन में आ सकूँ तुम्हारे ।"[2]

कर्ण के चरित्र की खूबी यह है कि वह जीवन भर अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान् है ।

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 86,
2. वही, पृ. 88.

भीष्म के पराभव तथा गुरू द्रोण के सेनानायक बनने के बाद कर्ण अग्रिम सेना का संचालन करता है । शरशैया से भीष्म की आशिष ग्रहण करके वह रणक्षेत्र की ओर प्रस्थान करता है । कर्ण तथा अर्जुन के बीच युद्ध चलता है । इस बीच भीम का सामना करना पड़ा तो माँ कुन्ती को दिए वचन का स्मरण करता है ।

एक छोटी सी अवहेलना से कर्ण के हृदय को जितनी बड़ी चोट लगती है, वैसे ही एक सांत्वना तथा आशीर्वाद से वह अजेय शक्ति का अनुभव करता है । कर्ण को सभी से अपमानित होना पड़ता है । लेकिन अर्जुन को हमेशा सम्मान और समर्थन मिलता है । अर्जुन के समान शक्तिशाली कर्ण केवल शूद्र कहे जाने के कारण इतनी अधिक विडंबनाओं का शिकार बनता है । भेद-भाव से युक्त सामाजिक व्यवस्था का पर्दाफाश कवि का लक्ष्य रहा है ।

कर्ण के दानी-रूप का द्वन्द्व खूब लाभ उठाता है । "देहदान" सर्ग में कवच-कुण्डल-दान का वर्णन है ।

जीवन भर शोषण की चक्की में पिसना कर्ण की विवशता है । फिर भी वह प्रसन्न है क्योंकि अपने दानीरूप की रक्षा करने में वह सफल हुआ है ।

कर्ण के अपार शौर्य से हम परिचित होते हैं हा घटोत्कच की मायावी-शक्ति तथा शरसंधान-कुशलता की झाँकी "शक्ति-संधान" सर्ग की विशेषता है । श्रीकृष्ण भीमपुत्र को प्रेरणा देता है -

"अपनी मायावी रचना और शक्ति के प्रयोगों से
कुंठित करो युद्ध में सूतपुत्र कर्ण को
जाकर बताओ अपनी अपूर्व शौर्य
करो निरूपंद उसके मिथ्या-अहं को ।"[1]

कर्ण घटोत्कच को मारने के लिए अमोघ-शक्ति का प्रयोग करता है । उसका उचित उपयोग न कर सकने के कारण कर्ण बहुत दुःखी होता है -

"रखी थी संजोकर यह शक्ति अर्जुन के प्राणों को
चली गई लेकर प्राण
मात्र एक नराधम के
यह क्लेश जीवन भर सालता रहेगा मुझे ।"[2]

विधि की विडंबना उसे मृत्यु तक घेरती रहती है । "निर्वहण" में कर्ण की मृत्यु का वर्णन है । अपने गुरू परशुराम के दिव्य-धनुष से अर्जुन को समाप्त करने के लिए वह शल्य का सारथ्य चाहता है । लेकिन शल्य का विचार इतना संकुचित है कि वह कहता है -

"मैं नहीं बनूँगा सारथी सूतपुत्र कर्ण का
वो तो है शूद्र और मैं श्रेष्ठ क्षत्रिय नृप
दासों के रथ हाँकना है अधर्म
यह तो प्रवंचना है, मृत्यु से भी बदतर ।"[3]

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 120.
2. वही, पृ. 131.
3. वही, पृ. 136.

दुर्योधन के अनुनय-विनय से अंत में शल्य सारथी बनता है । लेकिन शत्रु की महानता की घोषणा करनेवाले सारथी को पाकर कर्ण कुंठित होता है पर चुप्पी साधता है । क्योंकि -

"जानता था यह मनस्ताप उसकी नियति है
वह है भोक्ता इस कटु-यंत्रणा का
अपने शैशव काल से ।"[1]

इस कटु-यंत्रणा ने ही उसे सबकुछ सहने की शक्ति प्रदान की । कर्ण तथा अर्जुन के बीच घोर युद्ध चलता ही रहा । कर्ण को पराजित करने का पैन मौका पाकर कृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं । कर्ण के बहुत से अनुरोध के बावजूद भी अर्जुन के दिव्य-बाण ने उसे खत्म कर दिया ।

कर्ण की मृत्यु पर लोगों की व्यथा का वर्णन "युगान्त" की विशेषता है । कवि ने यह घोषित करने का प्रयास किया है कि कर्ण की मृत्यु द्वापर युग के अन्त का सूचक है -

"युग नहीं खींचे जाते किसी रेखा से
युग का निर्माण करते है विश्वजयी
कर्ण का अन्त ही द्वापर का अन्त है ।"[2]

मृत्यु के बाद लोगों की महानता का बखान करना स्वाभाविक है । कर्ण के संदर्भ में भी यही हुआ । कर्ण के मिथक के माध्यम से कवि ने युगीन संदर्भों को सक्रिय अभिव्यक्ति दी है । "अपमान एवं निर्वासन की आत्मग्लानि, सूतपुत्र होने की सामाजिक विडंबना, अर्जुन द्वारा अभद्र व्यवहार से उपजी प्रतिशोध की

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 137.
2. वही, पृ. 151.

भावना तथा भीष्म पितामह द्वारा उसे सेनापति न बनाया पाना आदि ऐसे प्रसंग है, जो आज के व्यक्ति की विसंगति, द्वन्द्व और तनाव को स्वर देते हैं ।"[1] चरमराते मूल्यों तथा खोखली मान्यताओं का पर्दाफाश करने के साथ साथ "सूर्यपुत्र" में कवि ने जीवन की विडंबनाओं तथा व्यक्ति की अस्मिता के संकट को शब्दबद्ध करने का कार्य किया है ।

मूल्यहीनता का विरोध तथा मूल्यों की तलाश

अकविता के दौर में भी जगदीश चतुर्वेदी ने मूल्यविघटन की ओर इशारा किया था । अकविता में उनका स्वर काफी प्रखर था । मूल्य-विघटन से उत्पन्न चिन्ता उनके लिए समाप्त नहीं होती । परवर्ती कविता में उनका स्वर संयम से युक्त है । "बीसवीं सदी के बाद" कविता में बदलाव का सही जायजा लेते हुए वे लिखते हैं -

"मनुष्य हो जायेंगे पत्थर
या अजायब घर
या तमाशबीन
दार्शनिक रहेंगे चुपचाप
प्रेमी युग्म हताश
सौंदर्य का नया शब्दकोश बन चुका होगा
पृथ्वी में प्रेम करने की जगह न होगी
(प्रेम करने शायद लोग शुक्र-ग्रह में जायेंगे ।"[2]

---

1. आठवें दशक की हिन्दी कविता, सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, लेख: आठवें दशक की मिथक कविताएँ, वीरेन्द्र सिंह, पृ. 239.
2. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 55.

वास्तव में यह कल्पना एक अनिवार्य नियति है । मनुष्य की आस्था मशीनी-सभ्यता की ओर उन्मुख है । मानव की मानवीयता का लोप हो चुका है । वह वन-मानुष कहने योग्य है । "मनुष्य का पत्थर हो जाना" स्थगित मानसिकता की अनुगूँज है । "पत्थर" संवेदनहीनता का प्रमाण है । प्रेम जैसे पवित्र मूल्यों की उपेक्षा के प्रति भी कवि संकेत करते हैं । वे मूल्यहीनता का विरोध करते हुए मूल्यों की तलाश कर रहे हैं -

"वह अपनी अन्तिम यात्रा पर चल पड़ा
पाने के लिए एक ऐसा नगर
जहां किलकते बच्चे हों
चेहरों पर वसन्त हों
नदियों में विचरती रंग-बिरंगी मछलियाँ हों
और तट पर अमन के गीत गाते हों[1]
मछुआरे तन्मय, आत्मलीन ।"

आत्मसाक्षात्कार की दिशाएँ

मुखौटाधारी व्यक्ति यांत्रिक संस्कृति की देन है । आज का मनुष्य अपने भीतर सबके प्रति घृणा और अविश्वास संजोये रखता है । कभी-कभी ऐसे आत्मसाक्षात्कार से भी व्यक्ति को गुज़रना पड़ता है, जो उसे अपनी असलियत का परिचय देता है । बाहर से चिकने रखने की बहुत सारी कोशिश के बावजूद भी जब अपने आपसे साक्षात्कार करता है तो सुनता है, अन्दर का वह अट्टहास, जो एक बूढ़े गौरिल्ले का है -

---

1. आखिरी दशक की लंबी कविताएँ, सं. नागेश्वर लाल, रमणिका गुप्ता, पृ. 19.

"तुमने तो अपने को दुनिया के दु:ख दर्द को सौंप दिया पर
एक क्षण को भी यह नहीं पहचान सके
कि तुम्हारे गोरे चमकते जिस्म के अन्दर
कितनी खाइयाँ हैं
कितने अविश्वास हैं
कितनी घृणा है
अपने आसपास के जीवन
समाज
और सबसे ज़्यादा खुद अपने आप से ।"[1]

अपने को पहचान लेना एक प्रकार से नए संबंधों की तलाश ही है । मानवीय संबंधों की नयी आकांक्षा परवर्ती कविता की खासियत है । परिजन और परिवार से मात्र ढोंग की सीख जिसको मिली थी, अब संबंधों में ऊष्मलता का अनुभव करता है । ऊष्मलता की यह अनुभूति उनकी सकारात्मक-दृष्टि तथा आस्था का सूचक है -

"एक उजला आकाश थी तुम
और तुमने एक छोटे वृक्ष सा
मुझे पूरा का पूरा ढँक लिया था
सच तुम मेरी माँ थी ।"[2]

उजला आकाश और छोटा वृक्ष अपनी संपूर्णता के साथ कवि की मानसिकता का प्रक्षेपण करता है । एक संवेदनशील व्यक्ति ही संबंधों में ऊष्मलता और आत्मीयता का अनुभव कर सकता है । "एक अनुभूति" कविता कवि की गहन संवेदनशीलता का परिचय देती है -

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 10.
2. वही, पृ. 13.

"कल सुबह एक नन्हीं सी चिड़िया मर गई
मुझे उसकी डबडबाई आँखें अजीब सी लगीं
मुझे ऐसा लगा
कि दूर देश में
मेरी बच्ची बीमार है
और मैं उसे देख नहीं पाऊँगा ।"[1]

जीवन मूल्यों का आकांक्षा-भरा स्वर इसमें से मिलता है ।

प्रकृति तथा जीवन यथार्थ का संदर्भ

अकविता-दौर की कविता में प्रकृति अनुपस्थित थी । लेकिन उनकी परवर्ती कविताओं में प्रकृति पुन: विन्यसित होती है । पर इन कविताओं को प्रकृतिपरक तो नहीं कहा जा सकता । जीवन-यथार्थ की पहचान के संदर्भ में प्रकृति का चित्रण हुआ है, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं । "आठवें दशक के कवि ने मुख्यत: अपने जाने हुए परिवेश के रेशे-रेशे को ज़िन्दा करने की कोशिश की है, निजी पहचानों को अर्थवत्ता और आत्मीय साहचर्य से गर्माहट दी है ।"[2] जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती कविताएँ इस संदर्भ में काफी उल्लेखनीय हैं । उज्जैन की धरती ने ज्यादातर कवियों को आकर्षित किया है । "मालवे का संगीत" में जगदीश चतुर्वेदी भी उज्जैन की सांस्कृतिक गरिमा से अभिभूत दीखते हैं । उज्जैन की धरती के कण-कण से उनका संबंध है -

"उसे प्यारा लगता है अक्षयवट

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 29.
2. आठवें दशक की हिन्दी कविता, सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी,
लेख: समकालीन कविता का आठवाँ दशक, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 225.

मंगल ग्रह की प्रदक्षिणा करती क्षिप्रा की तरंगें
एक बाँसुरी की आवाज़ वह अपने पास के कुंज में सुनता है
वह कृष्ण के सामीप्य में एक अपूर्व चेतना से भर जाता है ।"[1]

इतिहास के पन्नों को अपनी स्मृतियों के सहारे धीरे-धीरे खोलने का कार्य कवि ने किया है । अकविता के दौर में जगदीश चतुर्वेदी की अतीत-दृष्टि नकारात्मक थी । अतीत ही नहीं वर्तमान और भविष्य भी उनके अनुसार तिरस्कार के योग्य थे । लेकिन अतीत के प्रति एक प्रकार की रुझान परवर्ती कविता में दृष्टिगत होती है । परन्तु यह अतीत मोह नहीं है । अतीत के जितने संकेत कवि ने दोहराए हैं, उनमें मनुष्य केन्द्री वृत्ति पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है । धरती और प्रकृति के साहचर्य को अपने भीतर अनुभव करते हुए वे एक साथ अपने वर्तमान को विस्तृत कर रहे हैं । "मालवे का संगीत" उनकी लंबी कविता है । कवि अनुभव करते हैं कि अतीत की स्मृति सुखद है । उस सुखद स्मृति में डूबे हुए वे कहते हैं -

"अभी भी अतीत का सम्मोहन कम नहीं हुआ
वे धूल-भरे पहाड़ और तोते-भरे जंगल
अभी भी उसकी आँखों में वैसे ही जवान हैं,
जैसे तब थे ।"[2]

मालवे की मिट्टी की सुगन्ध उनके रोये-रेशे में समाहित है । धूल-भरे-पहाड़ और तोते-भरे जंगल की ताज़ी स्मृति में कवि कुछ क्षण के लिए अपने को भूल जाते हैं । इसमें कवि की गृहातुरता की भीनी-गंध भी मिलती है । पर यह गृहातुरता से बढ़कर घर की तलाश या कवि की लोक-संपृक्ति की दृष्टि से परिमार्जित सहज भाव है । वस्तुत: इसी भाव ने उनकी कविता को एक सार्थक

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 44.
2. वही, पृ. 42.

दृष्टि दी है । यह सही है कि तिरस्कार भावना का स्थान स्वीकृति ने ले लिया है । इस कविता में सबसे जुड़ने की प्रवृत्ति क्रमशः पल्लवित होती है । यह उनकी परवर्ती कविता की नई पहचान है । इसलिए कवि का कहना है -

"कितना अर्थपूर्ण है
अतीत की रेखाओं को नया अर्थ देना
विस्मृति के घने आवरण को चीरकर
संबंधों का नया आकाश तलाशना ।"[1]

"संरचना" की इन पंक्तियों से पता चलता है कि अतीत की सार्थकता को कवि ने कबूल कर लिया है ।

अकविता-दौर की जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ उखड़ी हुई मानसिकता का परिचय देती हैं । परवर्ती कविता इस उखड़ेपन से मुक्ति का तथा कहीं जमने की मानसिकता का आभास देती है । इसलिए प्रकृति संपूर्णता के साथ यहाँ उपस्थित है । "आठवें दशक के कवि के बारे में अक्सर कहा जाता है कि उसने अपने आसपास की छोटी-छोटी अनुभूतियों और चीज़ों को कविता का विषय बनाया, इससे कविता सैद्धान्तिक रूढ़ियों से निकली और उसमें एक आत्मीय स्पर्श और नई उर्वरता आई ।"[2] आत्मीयता अपने लोक जीवन के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने के लिए है । यह समकालीन कविता की प्रवृत्ति है ।

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 18.
2. आठवें दशक की हिन्दी कविता. सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
   लेख समकालीन कविता का आठवाँ दशक, प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ. 228.

दार्शनिक-चेतना की झाँकी

जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती कविताएँ खासकर "नए मसीहा का जन्म" की कुछ कविताएँ कवि के चिन्तक-रूप का परिचय देती हैं । कवि को अपने जीवन के अनुभवों ने चिन्तक की दृष्टि प्रदान की है । उनकी दार्शनिक-मुद्रा का आभास तब मिलता है, जब वह ज़िन्दगी को परिभाषित करने की चेष्टा करते हैं । "साक्षात्कार" में उनकी चिन्तक-मुद्रा की झाँकी प्रस्तुत करने वाली पंक्तियाँ हैं -

"ज़िन्दगी एक ऐसा रेगिस्तान है
जिसमें बियाबान बंजर
रेतीले टूह हैं
और दूर तक फैले रेत के समुन्दर हैं ।
यहाँ इन्सानों की नहीं
सूखी कँटीली झाड़ियों की मनहूस शक्लें दिखाई देती हैं ।"[1]

इसमें वास्तविकता के आघात से उत्पन्न अवसाद का स्वर है । पर इनसानों के चेहरे की खोज के कारण यह निरी दार्शनिकता की अभिव्यक्ति भी नहीं है । यथार्थ के उस अयाचित पक्ष को ही कवि प्रस्तुत कर रहे हैं । अपने को घिरा हुआ होने का अनुभव जगदीश चतुर्वेदी ने अकविता के दौर में भी प्रस्तुत किया है । परवर्ती कविता में यह भाव विस्तार पाता है । वह घिरा हुआ है । आतंकित भी है पर उसकी कराहट में समय का स्वर भी मिला हुआ है ।

"उसको लगा कि ज़िन्दगी एक टूटा हुआ बरगद का पेड़ है
जो जड़ों से उखड़कर ज़मीन पर पड़ा है

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 9.

और उसके लंबे जबड़े से कोटर में पड़ा हुआ
वह कराह रहा है ।"[1]

अकेलापन की भावना

जगदीश चतुर्वेदी की कविता की एक खासियत उनमें गुंफित अकेलेपन की भावना है । उनकी प्रारंभिक कविताओं में ही नहीं अकविता दौर की और बाद की कविताओं में अकेले बने रहने की मानसिकता की झाँकी मिलती है । "टूटा हुआ रथ" उनकी एक ऐसी कविता है, जिसमें अकेलापन का एहसास मिलता है -

"एक टूटा रथ है जिसमें मैं अकेला हूँ
एक बियावान जंगल जिसमें मेरी
डरी हुई परछाई है ।"[2]

एकाकीपन वास्तव में एक विवशता है । कवि उस विवशता का सहभागी है -

"उसने पहली बार महसूस किया
कि किसी का साथ कितना ज़रूरी है
अकेले आदमी को नदी रेगिस्तान लगती है
ताजे फूल कानखजूरे
और गुलमोहर के पुष्प कुम्हार के सुलगते अवाकुण्ड ।"[3]

बचपन से ही कवि अकेलापन झेलता आ रहा है । कवि स्मरण करते हैं -

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 37.
2. वही, पृ. 93.
3. वही, पृ. 86.

"यों ही गुज़र गये अकेलेपन के काले दैत्य से संग्राम करते
बचपन के सोलह सालों के मासूम कैलेण्डर ।"[1]

एकाकीपन कवि के जीवन का एक अंग है । वह बचपन से ही उसका भोक्ता रहा है । इसलिए उसका यह वर्णन ऊपर से आरोपित नहीं, सहज लगता है । यह भी नहीं इसप्रकार के परिचित व्यक्ति ही अकेलेपन को उसके सही संदर्भ में पहचानने का कार्य कर सकता है । अपने पुत्र का लंबी यात्रा पर निकलने पर कवि महसूस करते हैं -

"मुझे दूर देश जाते वायुयान की
घरघराहट में
न वृक्ष दिखाई दे रहे थे
न इन्सान
केवल उसकी गुमसुम आकृति
गोली, उदास
और नितांत अकेली
काफी दूर तक
मेरी दृष्टि से ओझल नहीं हुई थी ।"[2]

जगदीश चतुर्वेदी की काव्य-यात्रा के हर पड़ाव से होकर गुज़रते समय हमें उस सत्य का सामना करना पड़ता है कि एकाकीपन उनके जीवन तथा व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है ।

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 37.
2. वही, पृ. 32.

सामाजिक सरोकार के शब्द

परवर्ती-अकवितेतर-कविताओं में जगदीश चतुर्वेदी का सामाजिक स्वर अधिक बुलन्द है । लोक-संपृक्ति से उनकी कवि-दृष्टि सामाजिक परिदृश्य में अधिक विस्तार पाती है । इसलिए पाखंड का विरोध अपना दायित्व समझता है -

"मुझे इस देश का नक्शा पलटना है
और उसकी मिट्टी से
पाखंड को दूर भगाना है ।"[1]

अपनी भूमिका की पहचान भी समकालीन दृष्टि है । अपने स्वत्व के साथ अपनी दायित्व-चेतना को जोड़ने का कार्य उन्होंने किया है -

"मैं इतिहास के उन
पत्थरों को हटा दूँगा जिनके कारनामा गन्दे हैं
मैं एक धधकता अग्निकुंड हूँ
मैं धूमकेतु हूँ ।
मैं हूँ आक्रोश का नया रूप-शैतान से वाल्मीकि
बनता अग्रदूत - एक संदेशवाहक एक क्रान्तिदूत ।"[2]

धर्म हमेशा वाद-विवाद का विषय रहा है । अन्धे धर्म-प्रचारकों ने इस देश में अशान्ति का बीज बोया है । "बर्बरता के विरोध में" नामक कविता की पंक्तियाँ हैं -

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 60.
2. वही, पृ. 61.

"उगलो आग, भून दो ज़मीन पर
पैशाचिक वृत्तियों का प्रचार करनेवाले
मदोन्मत्त धर्म-प्रचारकों को ।"[1]

यह कविता आह्वान की प्रतीति देती है, फिर भी इस सहज घोषणा में दायित्व चेतना की वास्तविक विवृति है । कवि अन्तिम निर्णय लेते हैं -

"लगता था
धर्म यदि देश के टुकड़े कराता है
धर्म यदि लूटपाट मचाता है
धर्म बर्बरता का दूसरा नाम है
तो इसका अस्तित्व खत्म करने के लिए
कई जन्म लेकर भी प्रयास करना होगा
यही अंतिम निर्णय है ।"[2]

कवि मतदान को एक बचकानी प्रवृत्ति मानते हैं । चुनाव और हड़ताल साधारण सी घटना रह गयी है -

"देश की रीढ़ की हड्डी में सुराख हो गया है और
लोग-बाग कर रहे हैं चुनाव और हड़ताल..... कितना
बचकाना लगता है मतदाता पेटियों में वोट डालना
जब सारे चेहरे एक-से ही हैं स्वार्थी, धूर्त और मक्कार ।"[3]

अधिकार और राजनीति लोगों की स्वार्थता को पुष्ट करते हैं । आधुनिक पाखंडों पर उनका अंकुश इस कविता में प्रकट है ।

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 77.
2. आखिरी दशक की लंबी कविताएँ, सं. नागेश्वर लाल, रमणिका गुप्ता, पृ. 12.
3. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 59.

मशीनी सभ्यता

आधुनिक जीवन मशीनी सभ्यता की गुलामी का भोक्ता है । शहरी ज़िन्दगी सचमुच यांत्रिक है । उसमें व्यक्ति की कायापलट स्वाभाविक है । विज्ञान की बढ़ती प्रगति ने अनेक सुख-सुविधाओं को जन्म दिया । यांत्रिकता ने सब कहीं अपना प्रभुत्व स्थापित किया है । मूल्यहीनता का मूल कारण मशीनी सभ्यता का बोलबाला है । जगदीश चतुर्वेदी की कविता में मूल्यहीनता का विरोध सर्वत्र मिलता है । "बीसवीं सदी के बाद" नामक कविता में मशीनी सभ्यता की दर्दनाक परिणति की ओर कवि ने संकेत किया है -

"दो दशक बाद ये नदियाँ न रहेंगी गहरी
पहाड़ हो जायेंगे सपाट, शहर रेगिस्तान
एक ताबूत में बंद हो जायेगी संस्कृति
और सड़कों पर विचरेंगे रोबोट-यंत्र पुरुष ।"[1]

दो दशक के बाद के यंत्र-पुरुष की प्रभुता की कल्पना से कवि उस सचाई की ओर इशारा करते हैं, जिससे मनुष्यत्व का नामोनिशान तक नहीं रहेगा । नदियों का गहरी न रहना, पहाड़ का सपाट हो जाना और शहर का रेगिस्तान हो जाना यांत्रिक सभ्यता के युग में स्वाभाविक है । संस्कृति का ताबूत में बन्द हो जाना मूल्यों की अप्रासंगिकता का ही सूचक है । यह परिणति यांत्रिक सभ्यता की अनिवार्य नियति है । यह एक घटनाचक्र है, इसे रोकना असंभव है -

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 55,

"यह अनिवार्य नियति है
यह विश्व के लौह-चक्र की
लंबी जीभ है
जो इस सदी के अन्त तक
मनुष्य को अपने विशाल जबड़ों में
लील लेगी ।"[1]

"मशीन ने मनुष्य की सुख-समृद्धि के रचनाओं का आकार भड़काकर उसकी नियति को निरीह बनाया है ।"[2] गंगाप्रसाद विमल का यह कथन इस बात का संकेत देता है कि लोग मशीन तथा उसकी प्रभुता से इतने आकृष्ट क्यों होते हैं । सुख की लालसा व्यक्ति के मन को खोखला बना देती है । ऐसी हालत में कवि की घोषणा सार्थकता का परिचय देती है ।

समकालीन कविता अपनी बहुकेन्द्री-वृत्ति के कारण जीवन के विभिन्न आयामों का संस्पर्श करती है । उसमें जीवन के भीतर गोता लगाने की क्षमता है । पूरे एक दशक के बाद जगदीश चतुर्वेदी की कविता में दर्शित ये परिवर्तन हिन्दी कविता की नई दिशा के अनुकूल ही है । इन कविताओं में प्रथमत: मनुष्य विचारणीय होता है । सौंदर्य मनुष्य-सापेक्ष संदर्भ में परिभाषित होता है । तमाम विडंबनाओं को मनुष्योन्मुखी-वृत्ति में देखा गया है । विडंबनाओं के मूल में कार्यरत उपभोगवादी और नव-उपनिवेशवादी दृष्टि का परिचय भी यत्र-तत्र इन कविताओं से मिलता है । इसप्रकार जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ समकालीन होने का रचनात्मक उपक्रम कविता की ईमानदारी के साथ निभा रही हैं ।

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 56.
2. आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 132.

अध्याय पाँच

कविता-शिल्प के नये-नये आयाम और जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ

कविता और शिल्प

वास्तव में सफल कविता वह है, जिसमें कथ्य तथा शिल्प का उचित सामंजस्य हो । कथ्य तथा शिल्प अन्योयाश्रित हैं । फिर भी शिल्प पर अलग से विचार करने की अपेक्षा होती ही रहती है, जो प्रत्येक युग की शैल्पिक-नवीनता को समझाने में सहायक है । अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति में सहायक साधन ही वास्तव में शिल्प के अन्तर्गत आते हैं । विशेष रूप से कवि द्वारा प्रयुक्त बिंबों, प्रतीकों, मिथकों का कविता की संप्रेषणीयता में महत्व है । अलावा इसके काव्य-भाषा के विभिन्न स्तर भी काव्य-शिल्प के अन्तर्गत विचारणीय हैं ।

नयी कविता आधुनिक भावबोध की कविता है । नया भावबोध शिल्प में भी नवीनता का समर्थक है । नयी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की क्षमता प्राचीन शिल्प में नहीं है । अतः नए कवियों को काव्य-शिल्प की संभावनाओं के प्रति अतिरिक्त ढंग से सजग होना पडता है । अपनी बदली हुई संवेदनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए नए कवियों ने नयी भाषा की तलाश की । नयी काव्य-भाषा की प्रकट-इच्छा के साथ-साथ नए अनुभव के समान्तर स्वीकृत नए बिंब, प्रतीक और मिथक के प्रति भी नए कवि सजग रहे ।

अकविता का काव्य-शिल्प

अकविता का शिल्प पूर्ववर्ती कविता से भिन्न है । अकविता के कवि श्याम परमार ने लिखा है -"उसका कथ्य ही उसका शिल्प होगा ।"[1]

---

1. अकविता और कला संदर्भ, श्याम परमार, प्र.सं. 1968, पृ. 14.

उन्होंने यह भी कहा है - "भाषा फार्म और कथन की स्वाभाविक संगति अकविता के लिए आज तक की कविता और उससे संबंधित प्रतिश्रुतियों से ऊपर नए अर्थबोध की तलाश है ।"[1] नई कविता की बौद्धिक प्रवृत्ति अकविता में प्रखर हो जाती है । अतः अकविता की शिल्पसंरचनात्मकता को समझने के लिए तद्युगीन प्रखर बौद्धिकता की उचित जानकारी की ज़रूरत है । अकविता पारंपरिक शिल्प-विधानों में परिवर्तन लाने की एक कोशिश है । "निस्सन्देह समय की भाषा और युवामन के मुहावरे की तलाश करनेवाले, ये शब्दों के गोताखोर पनडुब्बे व्याकरण और शास्त्र की भाषा के अनुशासन के जंजाल से छुटकारा पा गए हैं ।"[2] अकविता के कवियों में एक ऐसा तीखापन है, जो उनकी भाषा और शिल्प में यों घुलमिल गया है कि हम उस शिल्प को पुराने काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुसार समझ नहीं सकते । अतः नई कविता के उस रूढ़ होनेवाले काव्य-मुहावरे को पहचान कर अकवियों ने अपनी शिल्पदृष्टि विकसित की है ।

अकविता की भाषिक संरचना

युगीन तनावों, दबावों तथा विसंगतियों के तीखापन और पैनापन से अकविता की भाषा में भी बदलाव आ गया है । "पारंपरिक भाषा को भी जो इस भारतीय नैतिकता की कवच बनी थी, अकविता पीढ़ी ने तोड़ा-फोड़ा । पूँजीवादी- व्यवस्था ने जिस भाषा का इस्तेमाल अपनी सुरक्षा में किया, उसी भाषा के समान्तर अकविता पीढ़ी ने एक जवाबी भाषा का इस्तेमाल किया । अभिजात्य पाखंड का पर्दाफाश जितना इस पीढ़ी ने किया उतना

---

1. अकविता और कला संदर्भ, श्याम परमार, प्र.सं. 1968, पृ. 9.
2. क्योंकि समय एक शब्द है, रमेश कुन्तल मेघ, पृ. 468.

शायद किसी अन्य पीढ़ी ने नहीं किया ।"[1] पाखंड के पर्दाफाश का सशक्त माध्यम तीखी और आक्रोशी भाषा है । "अकविता की अशांत और उग्र मनःस्थिति विक्षोभपूर्ण अनुभव और पूर्ण नकारात्मकता का ऐसी आक्रामक और नंगी भाषा का इस्तेमाल करती है, जो सीधे नई कविता की शालीन और भद्र काव्य-मुद्रा के विरोध में तनी हुई प्रतीत होती है ।"[2] अकविता की भाषा जीवन के अत्यंत समीप है । विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं - "एक काव्य भाषा के स्थान पर दूसरी काव्यभाषा का प्रयोग अकविता नहीं है, वरन् ऐसे लहजे को अपनाने से अकविता बनती है कि सुनते या पढ़ते समय लगे कि आप कविता नहीं, कोई बात सुन रहे हैं और इस बात में कोई ऐसी बात है कि वह अकविता लगने पर भी कविता होती है ।"[3]

रमेश गौड की कविता "पिता के लिए एक कविता" इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं -

"ओ पिता
मैं ने तो तुम से माँगा नहीं कुछ भी
कुछ भी नहीं चाहा
यह दिशाहीन सुबह
यह लक्ष्य-भ्रष्ट शाम
यह रोम रोम में टी.बी.के कीटाणु लिए जिस्म
यह धर्म और जाति से गंधाता हुआ नाम ।
यह घिसट-घिसट चलती हुई भाषा
यह युद्ध । यह आपत्कालीन स्थिति

---

1. नई धारा, अप्रैल-मई 1979, अंक 1-2, पृ. 13, लेखक सकलदीप सिंह
2. साठोत्तरी हिन्दी कविता परिवर्तित दिशाएँ, विजयकुमार, पृ. 8.
3. जलते और उबलते प्रश्न, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 269.

यह गैर-कानूनी गतिविधि -निरोधक अधि-नियम
यह एड़ी से चोटी तक कर्ज में डूबा हुआ भविष्य
- यानी जो कुछ भी तुमने विरासत में दिया
वही मैं ने सिर-माथे लिया ।"[1]

यहाँ स्थितियों की स्वीकृति भर नहीं है, सामान्य सी लगने वाली शब्दावली में उन सब सच्चाइयों का निरीक्षण भी है । स्वीकृति के तथ्य भाषा की सम-स्थिति का एहसास देते प्रतीत होते हैं । लेकिन अस्वीकृति की विषम-स्थिति की भाषा का मौन-तिरस्कार प्रस्तुत कविता में प्रकट हुआ है ।

परंपरागत काव्यशास्त्रीय मान्यताओं की उपेक्षा अकविता में हुई है । दुराव-छिपाव से रहित सहज भाषा को अकविता के कवियों ने अपनाया है । जीवन की विद्रूपताओं की खुली अभिव्यक्ति अकविता के कवियों की अलग पहचान है । चन्द्रकान्त देवताले ने लिखा है -

"जब कुत्तों का पागलखाना
बन जाएगा पूरा शहर....
मैं अपने मस्तिष्क में फूटे खून के फौव्वारे से
भींजता काल-भैरव की तरह दौड़ता जाऊँगा ।"[2]

परिवेश की विसंगति तथा विद्रूपात्मकता इन पंक्तियों में गुंफित है । तथाकथित अभद्रता की खुली अभिव्यक्ति अकविता की प्रकृति के अनुकूल है । अकविता भावुकता से मुँह मोड़ती है । यथार्थ के आगे के अतियथार्थ की भाषा के माध्यम से विद्रूप-स्थिति को प्रस्तुत किया गया है । अकविता के कवि

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 181.
2. वही, पृ. 52.

निराकुलता से यथार्थ का, चाहे वह भद्दा ही क्यों न हो, पर्दाफाश करते हैं ।

यथार्थ के खुदरेपन की अभिव्यक्ति खुरदरी भाषा से ही संभव है । ऐसी हालत में कविता में लय की जो महत्ता है, वह एकदम छूट जाती है । नयी कविता लय की अवस्थिति को प्रधानता देती थी तो अकविता लय की समाप्ति की सूचना देती है । "सामान्य कविता में छन्द और तुक को छोडकर भी लय थी, जो भावना की सहज अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त थी । अकविता ने लय को भी छोड दिया । वह लय, गति आदि की चिन्ता नहीं करती ।"[1] अकविता लयहीनता की कविता है । श्याम परमार की कविता "जलूस" का हवाला यहाँ प्रासंगिक है -

"मुर्दा फैलाव । कुर्सियाँ अनेक चिपकी हैं
बुरी तरह । फाइलों में कतरनें दिमाग की
खोलतीं, बंद करती रफ्तार, कीलतीं
आँखें ।"[2]

लयविन्यास का ध्वंस अकविता का इच्छित आदर्श भी है । नई कविता के आगे की स्थिति को अपनी पूर्णता में भाँपने के लिए अकविता ने नई कविता को तिरस्कृत समझा है । इस कारण से भाषा की "कॉलाज़ शैली अकविता ने अपना ली । यही नहीं अकविता का वस्तुसत्य हमारा भीषण यथार्थ रहा है । उसे अपनी भीषणता में पकड़ने के लिए "कॉलाज़" भाषा की

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ. 250.
2. विजप, गंगा प्रसाद विमल, पृ. 121.

आवश्यकता है जो लय से मुक्त भी हो । भाषा की सामान्यता में असमान्य स्थितियों को भरकर अकविता ने आगे की काव्य-भाषा की पूर्वपीठिका तैयार की ।

अकविता का बिंब-विधान

अकविता का रचना-संसार विशिष्ट है । अपनी विशिष्ट अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्ति के लिए अकवियों ने बिंब का सहारा लिया है । लेकिन "नई कविता की संवेदनशीलता और सौन्दर्य-दृष्टि के चमत्कारिक बिंब-संपुजन से इसकी सत्ता विलग है ।"[1] नए कवियों ने बिम्बों के प्रति अतिरिक्त मोह प्रकट किया । विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं -"नयी कविता जहाँ बिम्बों की तलाश में व्यर्थ भटकती रही, वहाँ अकविता अनायास आसपास के जीवन को गौर से देखती सुनती है और साधारण बातों और संवादों में थोड़ी सी मरोड़ पैदा करके उन्हें व्यंजक बना देती है ।"[2] अकविता वास्तविकता का सीधा साक्षात्कार है । अकविता का बिंब-विधान अधिकतर जटिल है -

"खोखला इतिहास रीढ-को ठोकर देता
लॉन पर दौड़ते अलसेशियन की पीठ पर
चढ़ जाता है
आबनूसी छतों में फँसे आदिम हाथों के
संगमरमरी लावे में बहती लाशों को
उपेक्षा से देखता है
और भी पुराना मन ।"[3]

---

1. अकविता और कला संदर्भ, श्याम परमार, पृ. 9.
2. जलते और उबलते प्रश्न, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 281.
3. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 104.

"लगातार जटिल होती हुई सभ्यता के लिए कविता में जटिल बिम्बों का निर्माण न्याय संगत है, जो युग नया-चिन्तन और नया-इन्द्रियबोध प्रदान करेगा, वह साहसपूर्ण नये बिम्बों के निर्माण की चुनौती देगी ।"[1] आज का कवि प्रेम, यौन-संबंध, सौन्दर्य सबको उनके जटिल और वास्तविक रूप में बिम्बों के सहारे उभारता है ।"[2] वह चाहे जटिल ही क्यों न हो बिम्बों के माध्यम से अधिक प्रेषणीय बनती है ।

परेश अपनी कविता "यह मिथ नहीं" में अपना नाम और परिचय साँप की केंचुल की तरह ऊपर ही छोड़ देने की बात कहकर जो बिंब की सृष्टि करता है, वह सचमुच विशिष्ट है -

"दिन, मान और समय के बोध से बचने के लिए
मैं किसी तहखाने में उतर जाऊँगा
शताब्दियों की सीढ़ियों पर पाँव रखते हुए मैं
इतिहास के अन्धेरे में उतर जाऊँगा
लौट आऊँगा मैं सृष्टि-पूर्व के आदिम और अखंड एकांत में
अपना नाम और परिचय साँप की केंचुल सा
ऊपर ही छोड़ दूँगा ।"[3]

जीवन की वर्तमान स्थिति से दूर भागकर अतीत की स्मृतियों को टटोलने की कोशिश कर कवि पुनः अखण्ड एकांत की तलाश में

---

1. कविता की मुक्ति, नन्दकिशोर नवल, पृ. 39.
2. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम, डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. 149.
3. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 130.

लग जाता है । नाम और परिचय को साँप की केंचुल की तरह ऊपर ही छोड़ देना संबंधोंके प्रति उदासीनता का प्रमाण है ।

"यातना" कविता में गंगाप्रसाद विमल ने बिगड़ी हुई हालत तथा मनुष्य की लाचारी का बिंब प्रस्तुत किया है -

"एक मनुष्याकार लगातार अपने मांस से रक्त बहाए जा रहा है
हज़ारों छिपकलियाँ रेंगती हुई रक्त पीती हैं
मुझे फेंक दिया है यहाँ
यहाँ आदिम बिम्बों के दर्पणों पर झाँक
मैं अन्धा हो गया हूँ ।"[1]

लगातार रक्त बहानेवाले मनुष्याकार और छिपकलियों के माध्यम से जीवन की विसंगतता और व्यक्ति की विवशता पर प्रकाश डाला गया है । व्यक्ति इन विडंबनाओं को दूर नहीं कर सकता । वह इनका आदी हो गया और अपने को अन्धा महसूस करता है ।

विचारों की असंबद्धता से भीतरी बिखराव की झलक मिलती है तो खंडित-बिम्बों का सृजन होता है । अकविता के कवि अपनी आन्तरिक असंबद्धता का प्रक्षेपण खंडित-बिम्बों के ज़रिए करते हैं -

---

1. विजप, सं. गंगाप्रसाद विमल, पृ. 9.

"घना नीला शोर उँगलियों में
बंद त्रिज्याएँ
बर्फ़ में नंगी हुई मेरी हथेली
अभिनन्दनोत्सुक शिला पर
सिर पटकती युवा इच्छा
पेड़ होना चाहती भूमि से विच्छिन्न
वितृष्णा, घृणा
ऋतुमति गंगा हुई जातीं
आदमी की आंत में
सैन्य शिविरों का अन्धेरा पाल छूटा
पीढ़ियों का पोत
रेतता है दर्प
साँप बाँबी पर गिरेगा अब ।"[1]

अकविता के कविनअपनी उलझी हुई संवेदनाओं को बिम्बों के सहारे प्रस्तुत किया है । अतीत, वर्तमान और भविष्य का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि विनय लिखते हैं -

"एक शानदार अतीत
बक्से में बन्द हो गया है
सड़कों पर बिखर गया है वर्तमान
और दिखाई देती है
कुहरे में भटकती हुई एक लाल रोशनी ।"[2]

---

1. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 117.
2. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 56.

बक्से में बन्द अतीत और सड़कों पर बिखरे वर्तमान संभावनाओं से शून्य है । भविष्य की अनिश्चितता का बिंब उभारने के लिए उन्होंने 'कुहरे में भटकती हुई लाल रोशनी' शब्द का प्रयोग किया है ।

अकविता का प्रतीक-विधान

अपनी संवेदनाओं की संश्लिष्टताओं के अनुरूप अकवियों ने विशेष प्रकार के प्रतीकों का सहारा लिया है । बिंब की अपेक्षा प्रतीक का समाज के साथ अधिक संबंध है । बिंब का व्यक्ति तथा उसके विशिष्ट अनुभव के साथ गहरा लगाव है । प्रतीक से कवि जो अर्थ प्रेषित करता है उसकी सामाजिक स्वीकृति अवश्य मिलती है ।

सौमित्र मोहन "आत्म वक्तव्य" में अपने को मिट्टी में सिर गाड़े पक्षी की तरह मानते हैं -

"मिट्टी में सिर गाड़े
पक्षी की तरह
मैं
आकाश गिरने की दुर्घटना के टलने की
प्रतीक्षा करूँगा ।"[1]

विद्रूपात्मकता से परिचित होकर भी उसे अनदेखा करने की आदत को मिट्टी में सिर गाड़े पक्षी के प्रतीक से कवि ने व्यक्त किया है ।

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 80.

यह प्रतीक साधारण प्रतीत होते हुए भी बहुआयामी-अर्थव्यंजना में सहायक है ।

चन्द्रकान्त देवताले की कविता "इस शिविर में" अकविता की प्रतीक-योजना का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है -

"खोये हुए दिनों का जख्म
भरता नहीं
बुझ कर
देह के ही अंग सा लगता है
पछतावा आगन्तुक की तरह
जिस देहरी से टरका
भीतर आने के बाद
"बच गए" का तोष
पीठ पर ठण्डे हाथ की तरह
फिसलता है ।"[1]

कुमार विमल की कविता "डरा हुआ आदमी" डर के प्रतीक को विन्यसित करती है -

"अस्पताल तो केवल मरीचिकाएँ हैं
और नींद की गोलियाँ मात्र संभावनाएँ
डर तो मेरे भीतर एक उगा हुआ पौधा है
जिसको मेरा सारा परिवेश सींचता है

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 49.

दफ्तर में बॉस
घर में परिवार
कॉफी हॉउस में दोस्त
पार्टी में प्रतिबद्धता की वर्जनाएँ ।"[1]

श्याम मोहन श्रीवास्तव अपनी कविता "गोधूली" में मन के भीतर को प्रतीकों से उभारते हैं -

"गोधूली में
निर्जन पथ पर
चुपचाप उतरने लगता जब सन्नाटा
जब उगने लगते
अँधियारे के जंगल
पल भर उदास हो जातीं खोई आँखें
नैवेद्य-सरीखा
तिल-तिल जलता अंतर
छा जाता बनकर अगरु-धूम संवेदन -
कुश-सी ऐंठन
संकल्पित मन के भीतर ।"[2]

प्रतीक-विधान सभी काव्यप्रवृत्तियों में उपलब्ध होना काव्य प्रतिमान है जो तद्युगीन सौंदर्य परिकल्पना में सहायक है । अकविता के प्रतीक कुछ विशिष्ट दीखते हैं । वह इसलिए है कि उनमें से विवृत होनेवाली अर्थ-छटा सामान्य नहीं है । प्रायः असामान्य प्रतीकों को वे प्रस्तुत करते रहते हैं ।

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, प्र. सं. 1972, पृ. 162.
2. प्रारंभ, सं. जगदीश चतुर्वेदी, प्र. सं. 1963, पृ. 167.

अकविता और मिथक

आधुनिक जीवन संदर्भों को व्याख्यायित करने के एक साधन के रूप में मिथक का आधुनिक साहित्य में विशिष्ट स्थान है । नई कविता के दौर में अनेक मिथक-काव्यों की रचना हुई । अकविता के कवियों ने भी अपनी कविताओं में मिथकों का प्रयोग किया है । इन मिथकों का हमारे अवचेतन के साथ गहरा संबंध है । आधुनिक जीवन की जटिलताओं को उसके सही संदर्भ में अंकित करने में मिथकों से सहायता मिली है -

मुद्राराक्षस की कविता "शिखण्डी" उस नपुंसक भारतीय जनमानस का सही प्रस्तुतीकरण करती है, जो समूची विभीषिका को भाग्य मानकर स्वीकारता चलता है -

"वह खतरा है
क्योंकि उसके हाथों
हथियार नहीं है और व्यवस्था ने
उस प्रस्तुत शिखण्डी के
बिना बाँहों के कन्धे पर
लटकाने शुरू किये हैं
अपने सुझाव ।"[1]

शिखण्डी के माध्यम से यहाँ स्थिति की अराजकता का पर्दाफाश किया गया है ।

रमेश गौड़ की कविता "मेरी पीढ़ी एक आत्म स्वीकृति" वाल्मीकि की याद दिलाती है -

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 146.

"जंग लगे जिस्मों पर
जब चढ़ी दीमकें
हम ने स्वयं को वाल्मीकि बतलाकर
गौरवान्वित कर लिया ।
छलनी हुए फेफड़ों में
आत्मतोष भर लिया ।"[1]

कुमार विकल की कविता "डरा हुआ आदमी" "बोधिवृक्ष" के मिथक का संस्पर्श देती है -

"लाल ईंटों वाली विशाल इमारत के सामने खड़ा
एक आदमी कुछ इस तरह सोचता है
कि इन दीवारों पर
शायद कोई बोधिवृक्ष होगा
और जब वही आदमी
उस इमारत से बाहर आता है
तो ज़ोर से चिल्लाता है
कि अस्पतालों में बोधिवृक्ष नहीं उगते
और डरे हुए आदमी का कोई मसीहा नहीं होता ।"[2]

अभिमन्यु तथा चक्रव्यूह आधुनिक जीवन की विसंगतियों तथा उसके बीच पिसते हुए मानव का चित्र प्रस्तुत करता है -

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 180.
2. वही, पृ. 162.

"मुझे, हाँ सिर्फ मुझे ही
चक्रव्यूह ढहाना है ।
- क्योंकि यह जीने की अनिवार्य शर्त है ।"[1]

रमेश गौड़ की कविता "शर्त" जीने के लिए चक्रव्यूह ढहाने की बात करती है तो "अभिमन्यु" में वे लिखते हैं -

"अनुभव ने तो
कहानी पूरी सुनाई थी
किन्तु
जाने कब
कैसे
उम्र की आँख कहीं लग गई
और
आज अभिमन्यु....
अभावों के चक्रव्यूह में फँसा है
दम घुट रहा है ।"[2]

"मेरी पीढ़ी एक आत्मस्वीकृति में" रमेश गौड अपनी पीढ़ी को अंधों की पीढ़ी मानते हैं । अन्धेपन को "धृतराष्ट्र" वे मिथक से अधिक सार्थकता मिली है -

"और फिर बड़े-बड़े हरफों में
सफेद से लिखना -
कि यह -

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 173.
2. प्रारंभ, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 190.

यह धृतराष्ट्रों की वह पीढ़ी थी
जो कस्तूरी-मृग की तरह
सूरज को मुट्ठियों में कसे हुए
सूरज की तलाश में बीत गई ।"[1]

श्याम मोहन श्रीवास्तव की कविता "एक दिन का इतिहास" त्रिशंकु के मिथक को काफी सहजता से प्रस्तुत करती है -

"चाल-ढाल में, सोच-विचार में
पहनावे में, शक्ल सूरत में
बुद्धि में, धन में
और तो और, तबके में
मैं सहज मीडियॉकर हूँ
और त्रिशंकु जैसी
मेरी स्थिति बीच की है ।"[2]

अकवियों ने अधिकाधिक पुराण के मिथक ही लिए हैं । लेकिन मिथक विन्यास नई कविता से भिन्न है ।

जगदीश चतुर्वेदी का काव्य-शिल्प

जगदीश चतुर्वेदी की कविता-यात्रा विकास के तीन पड़ावों से होकर गुज़रती है । हरेक दौर में भाषा, बिम्ब, प्रतीक आदि स्पष्ट

---

1. निषेध, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 180.
2. प्रारंभ, सं. जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 172.

बदलाव का परिचय देते हैं । इसीलिए शिल्प-संदर्भ में भी उनकी कविताओं का प्रारंभिक, अकविता दौर की और परवर्ती जैसे तीन भागों में विभक्त करके विश्लेषण किया गया है ।

प्रारंभिक कविता तथा भाषा

जगदीश चतुर्वेदी की प्रारंभिक कविताएँ उनकी किशोर-सुलभ अनुभूतियों का परिचय देती हैं । प्रकृति के रोये-रेशे में व्याप्त सौंदर्य को आँख भर निखारने की छटपटाहट इन कविताओं में है । इस समय की उनकी भाषा में लयात्मकता तथा प्राकृतिक-उपादानों से संबद्ध शब्दावली की भरमार है । कवि ने प्रसंगानुकूल रूमानी-भाषा का परिचय दिया है -

"काली-काली बदली
रेशम के पर्दे-सी
घिर आती नभ पर
इठलाती ।"[1]

लयात्मकता का संस्पर्श उनकी प्रारंभिक कविताओं की विशेषता है । लोकलय को बनाये रखने का कार्य उन्होंने यहाँ किया है । कवि "बादरा साँवरे" में लिखते हैं -

"शबनमी पाँख में
सारसी आँख में
लाल डोरे भरे
बाँसुरी बज उठी

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 57.

रास की तान रे ।
बादरा साँवरे ।"[1]

रासलीला के एहसास के साथ लोकलय की अवस्थिति इन पंक्तियों की विशेषता है । इस दौर की जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में उर्दू-शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो संभवत: उर्दू शायरी के प्रभाव को दर्शाता है -

"रेशमी जुल्फें कभी थी जो घटाओं सी सुहाती
जो छिपाकर चाँद को तस्वीर मेरी थी बनाती
आज इस सूने डगर में मैं बनाता महल ख्याली
दिन तो हँस रो के बिताता पर न बीतें रैन काली ।"[2]

उसी प्रकार "स्वप्निल रानी" में कवि ने प्रेम का जो गीत गाया है, उसमें उर्दू-शायरी का प्रभाव है -

"तुम कौन प्रतीक्षा में रत
उन नरगिस सी आँखों से ;
मृदु जाम पिला मदमाती
उन फीरोज़ी पाँखों से ।"[3]

उद्घोषणात्मक कविताएँ

पूर्वराग में संकलित जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य का अंकन ही नहीं, बल्कि उनकी सामाजिक जागरूकता का भी प्रमाण उपलब्ध है । "क्रान्तिगीत" में कृषकों को जागृत करने के लिए कवि ने उद्घोषणात्मक-भाषा का प्रयोग किया है -

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 71.
2. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 10.
3. वही, पृ. 31.

"बलिदानों में, तृण दानों में
गल-गल कर मिटते प्राणों ने
रोने, हँसने और गानों में
पिस, पिस कर मरनेवालो तुम आज भैरवी तान सुना दो,
आज मचा दो क्रान्ति कृषक तुम, आज विश्व में क्रान्ति
मचा दो ।"[1]

उनकी कविता "विश्व वंद्य बापू के प्रति" इस संदर्भ में काफ़ी उल्लेखनीय है -

"अर्थी का बोला कफन शांति के रव से
ये गोली जो तेरे सीने पर दागी
ये तेरा एक कपूत-पुत्र है बागी
मुख पर उस क्षण भी शांति-घटा थी छहरी,
शत्-शत् प्रणाम युग मानवता के प्रहरी ।"[2]

इस तरह देश-प्रेम, प्रेम जैसे विषयों को लेकर उन्होंने कविता की रचना की है तो विषय की विविधता के समान भाषा के तेवर में भी वैविध्य का समावेश हो गया ।

बिम्बयोजना और प्रारंभिक-कविताएँ

जगदीश चतुर्वेदी की प्रारंभिक कविताओं पर छायावादी और नवस्वच्छन्दतावादी प्रभाव स्पष्ट है । उस प्रभाव से धीरे-धीरे मुक्त होने

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 11.
2. वही, पृ. 41.

का प्रयास भी ध्यातव्य है । उनकी इस दौर की कई कविताएँ बिंब-विधान की दृष्टि से समृद्ध हैं । "पावसगीत" इसका प्रमाण है -

"नाच रहीं नभ पर बीजुरियाँ बावरी
गाती मेहा मल्हार बदरियाँ साँवरी
अमवा की डाली से कोयल कूकती
सरिता की लहरें तट को हैं चूमती ।"[1]

विशिष्ट शब्दों के प्रयोग से लय की सृष्टि इन पंक्तियों की विशेषता है । अलावा इसके कोयल का कूकना, लहरों का तट को चूमना क्रमश: ध्वनि तथा स्पर्श बिंब का प्रमाण है ।

साज सज्जा से प्रिय की प्रतीक्षा करनेवाली प्रिया का वर्णन सहजता से किया गया है -

"सजी है आज वेणी मोंगरे के फूल से उसने
सितारों से जड़ी चुनरी सजाई गात पर उसने
गुलाबी हाथ उसने आज मेहंदी से रचाये हैं
प्रतीक्षाकुल अधर में गीत गुनगुन गुनगुनाये हैं ।"[2]

प्रतीक्षारत प्रिया का यह बिंब है । उसकी वेणी फूल से सजी हुई है । गात की शोभा सितारों से जडी चुनरी से बढ़ जाती है । हाथ मेहंदी से शोभित है । गीत गुनगुनाकर वह अपनी उमंग तथा प्रतीक्षा की दिलचस्पी का परिचय देती है ।

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, प्र.सं. 1982, पृ. 66.
2. वही, पृ. 39.

प्रतीक तथा पूर्वराग की कविताएँ

जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में प्रतीकों की निजी पहचान है । प्रारंभिक कविताओं में उन्होंने ऐसे प्रतीकों को सृजित किया है, जो पूर्ववर्ती कवियों के प्रतीकों से भिन्न न होने पर भी निजता से युक्त है । लोकगीतों की लय को बनाए रखते हुए कवि ने अपनी प्रतीक-योजना का परिचय दिया है -

"केसर के रंग में रंगी खड़ी गोरी मुसुकाती
रोली गुलाल में पगी कुमुदनी सी सकुचाती
गीतों के सुन्दर काव्य रूप की सरस कल्पना
ज्यों कामदेव की प्रिया, रूप की स्वयं अर्चना
खो गई लाज स्वयं श्याम की सुनी मुरलिया ।"[1]

कामदेव की प्रिया अनुपम सुन्दरता की प्रतीक हैं । "खो गई लाज स्वयं श्याम की सुनी मुरलिया" से प्रेमिका का रूप भी उभर आता है ।

"पनिहारी" कविता कवि की सौंदर्य-चेतना का सशक्त प्रमाण है । ग्रामीण चित्र का समावेश इस कविता की अलग पहचान है । कवि पनिहारी की सुन्दरता का वर्णन करते हैं -

"जुही-सा तन, कली-सा मन,
जहाँ धड़कन मचलती है,
कभी भर नयन लख लेती
जहाँ मदिरा छलकती है

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 53.

लिए हैं हाथ में रस्सी
किसी पहुँचे शिकारी सी,
झुकाकर चारू अंगों को
झुकी पागल पुजारी सी ।"[1]

पहुँचे शिकारी और पागल पुजारी की कल्पना पनिहारी की सुन्दरता के साथ-साथ उसके हाव-भाव की सहजता तथा गंभीरता की सूचना देती है ।

जगदीश चतुर्वेदी की अकविता तथा भाषिक-स्थिति

जगदीश चतुर्वेदी की कविता-यात्रा का दूसरा पड़ाव अकविता का है । सन् 1957 तक आते-आते उनकी काव्य-मानसिकता बदलाव का परिचय देने लगती है । पूर्वराग की अंतिम कविताओं में यह बदलाव स्पष्ट है । जीवन की विसंगतियों को कवि ने सीधी भाषा में अभिव्यक्त किया है -

"मैं
तुम्हें (शायद अपनत्व की चरम को)
अस्थिपंजर का
नोंचा हुआ एक लोथड़ा कहूँगा
जिसने मेरे व्यक्तित्व के
कई क्षण
नोंचकर गंदी ओखरी में
फेंक दिये हैं ।"[2]

---

1. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 19.
2. वही, पृ. 98.

अस्थिपंजर का नोंचा हुआ लोथड़ा और गंदी ओखरी में नोंचकर फेंक दिये गये व्यक्तित्व के कई क्षण व्यक्ति की जीवन के प्रति असंपृक्ति का सूचक है । यह असंपृक्ति अपने प्रति भी है, क्योंकि जीवन की व्यर्थता और निरर्थकता व्यक्ति को अपने अस्तित्व तक को खतरे में डाल देती है ।

परिस्थितियों के बोझीलेपन के प्रभाव ने उनकी कविता के तेवर को भी बदला दिया और एक नई कविता-प्रवृत्ति का भी सूत्रपात किया जो वातावरण को शान्त नहीं, और भी भयानक बना देते हैं । ऐसे प्रसंग में जन्तु-जालों की शब्दावली का प्रयोग वे करते हैं -

"बस एक इन्तज़ार है किसी शिकंजे का, किसी भेड़िये
के पंजों का । कोई भी हो सकता वह जवाँबाज,
कोई क्रान्तिकारी, कोई बदशक्ल गौरिल्ला या जासूसी
कहानियों का तरताज- लाल पंजा ।"[1]

भाषा का यह तीखापन परिवेशगत विद्रूपताओं की परिणति है । कवि डूबते इतिहास का गवाह है । वे जानते हैं कि इन्तज़ार व्यर्थ है । फिर भी वे प्रतीक्षा करते हैं किसी शिकंजे की, किसी भेड़िये के पंजों की । "अस्वीकार के तेवर के अनुकूल भाषा की मुद्रा भी परिवर्तित होती है और उसके मुहावरे में समसामयिक परिवेश का जीवंत-स्पंदन प्राप्त होने लगता है ।"[2] "याहिया खाँ के नाम" कविता में वे लिखते हैं -

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 65.
2. आधुनिक कविता नए संदर्भ, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, पृ. 28.

"मैं देख रहा हूँ पूर्व में जलती भयानक आग
मैं देख रहा हूँ सुरसा की लाल विकराल जीभ
मैं देख रहा हूँ पागल कुत्तों की तरह झपटते
धर्मान्ध फौजी भेड़िये के झुण्ड
मैं देख रहा हूँ बूढ़ी गंगा पर बादल संगीत गुनगुनाते
माँझियों का सामूहिक कत्ले-आम ।"[1]

भीतरी और बाहरी अराजकता तथा बिखराव को सूचित करने के लिए कवि ने जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, वह सार्थक ही है । सुरसा की लाल-लाल विकराल जीभ स्थिति की भीषणता को अतिरिक्त गहनता प्रदान करती है ।

"मैं रहूँगा मौन और निष्पंद- नहीं करूँगा यह,
नहीं खोंचूँगा तरकस..... एक शून्य में जीता हुआ
कर रहा हूँ महानाश की प्रतीक्षा, नियति का काला
पत्थर बनकर चुपचाप निठल्ला और उदास ।"[2]

काला पत्थर कवि की संवेदनहीन-भाषा की नहीं उस विशेष-स्थिति की सूचना देता है, जो जीवन भर उन्हें विवश करती है । नन्दकिशोर नवल इन पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखते हैं -"जगदीश चतुर्वेदी की कविता की भाषा काले पत्थर की तरह जड और निष्प्राण है ।"[3] काला पत्थर भाषा की नहीं स्थितियों की निष्क्रियता का द्योतक है ।

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ.81.
2. वही, पृ.40.
3. पहल-13, सं.ज्ञान रंजन, कमला प्रसाद, जनवरी 1973, नन्दकिशोर नवल, अपनी केवल धार, पृ.227.

सपाट-बयानी का भाषिक-संकेत

सपाट बयानी आधुनिक कविता की विशेष भाषिक-रीति है। कविता सपाट होने की गवाही तब देती है, जब उसमें अनुभूति की गहनता के साथ-साथ विचार की प्रामाणिकता को अनुभूत्यात्मक स्थिति भी हो । "गोपनीय सत्य" में कवि लिखते हैं -

"आजकल ऋतुएँ अच्छी लगती हैं
महिलाएँ अधिक स्वस्थ
और पुरुष आकर्षक ।
आजकल भरी बसों की भीड़
उकताहट नहीं देती ;
दोस्तों की बहसों में
रुचि लेना अच्छा लगता है
मुझे क्या मालूम था
कि मेरे यंत्रवत् जीवन का क्रम
यूँ एक साथ बदल जायेगा ?
यदि मुझे यह
अत्यंत गोपनीय सत्य पहले मालूम होता
तो, मैं
हर संपर्क में आनेवाली महिला से
घुलमिल कर बातें करता
और,
नित्य कर्म का आवश्यक अध्याय जान
पर-नारियों से प्यार करता ।"[1]

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 84.

मूल्य-विघटन की स्थिति को मूल्य के रूप में स्वीकार करके भाषा की सपाटता के साथ-साथ स्थितियों की अंतरंगता पर प्रकाश डाला गया है । "जनतंत्र" नामक कविता भाषा की सपाट-बयानी का एक अलग संदर्भ उभारती है -

"शहर सोता है चुपचाप
कुछ नहीं होता है
सुबह अखबार की सुर्खियों से लगता है
कल रात एक बड़ी मीटिंग हुई थी
और सरकार बदल गई है ।"[1]

जगदीश चतुर्वेदी ने सपाट-बयानी को अपने उद्देश्य की पूर्ति का एक सशक्त भाषिक शिल्प के रूप में स्वीकार किया है । "व्यवस्था, तंत्र, पारंपरिक मूल्य, यौन, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, घूसखोरी तथा संबंधों का टूटता हुआ एहसास, ये सभी तत्व आज के कवि को आन्दोलित करते हैं और उन्हें कभी बिंबों कभी वक्तव्यों तथा कभी तीखे व्यंग्य के द्वारा सपाट भाषा में व्यक्त करते हैं ।"[2]

अकविता तथा बिम्ब

भाषा की ही भाँति इस दौर के बिंब-विधान भी अस्वीकार की मुद्रा का परिचय देता है । जीवन के असंतुलन तथा हाहाकार की सही प्रस्तुति जगदीश चतुर्वेदी की कविता में हुई है -

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 59.
2. आधुनिक कविता नए संदर्भ, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, पृ. 52.

"टूटकर अर्राकर गिरते पहाड़, गंधक भरी नदियाँ
झरनों के श्वेत-फेनों पर लावे की अनगिनत परतें
असंतुलित जीवन और हाहाकार ।"[1]

पहाड़ों का टूटकर अर्राकर गिरना, नदियों का गंधक से भर जाना तथा झरनों के श्वेत फेनों पर लावे की परतों का होना उस अराजक तथा असंतुलित जीवन का बिम्ब पेश करता है, जो चारों तरफ से व्यक्ति को आक्रांत करता है । डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने "जगदीश चतुर्वेदी की काव्य भाषा" पर बातें करते हुए लिखा है -"वह पुराने प्रतीकों और रूढ़-बिम्बों का पिण्ड छोड़ देता है और आसपास के जानवरों, पक्षियों को नये प्रतीकों में ढालकर नया अर्थ ध्वनित करता है ।"[2] चारों ओर की विडंबनाओं से आक्रांत व्यक्ति की स्थिति परकटे कबूतर से तनिक भी बेहतर नहीं -

"मेरी यातना के पंखों में छिपे हैं यंत्र युग के सर्प
सर्पों ने तमाम फसलों को मसल डाला है
लोग केंचुओं की तरह मर रहे हैं
और असहाय मुर्गों की तरह दे रहे हैं बांग
मैं इन असहाय चमगादड़ों की सड़ांध भरी कोठरी में
परकटे कबूतर सा फड़फड़ा रहा हूँ निरुपाय, बेबस ।"[3]

यंत्रयुग की विभीषिका से आक्रांत मनुष्य की दर्दनाक स्थिति का बिम्ब यहाँ उभरता है ।

---

1. विजप, गंगा प्रसाद विमल, पृ. 45.
2. जगदीश चतुर्वेदी विवादास्पद रचनाकार, कमल किशोर गोयनका, पृ. 337.
3. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 37.

नल्लहीन नगर, जगदीश चतुर्वेदी की एक ऐसी कविता है जो व्यक्ति की भीतरी और बाहरी अस्तव्यस्तता का बिंब पेश करती है -

"कितने डरे हुए दिखते हैं सभी लोग
छातियों पर हाथ बाँधे, सहमे से
नतमस्तक -
ज्यों गिलोटिन पर चढ़ाये जा रहे हों ।
नगर में शोर है
विषैला धुआँ आँखों से निकल रहा है
सभी मर्द खिलौने कछुओं से पहने हुए हैं खोल
केंकड़े सी सिमटी जा रही हैं रतिक्रान्त युवतियाँ
मुझे बल्बों की कतार सी टिड्डियों की टोली
नपुंसकों का हुजूम ।"[1]

अरक्षित लोगों का सही अंकन करना कवि का लक्ष्य रहा है । अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में कवि ने जो बिंब चुना, वह सार्थक है ।

"एक लंगड़े आदमी का बयान" में कवि एक गौरिल्ले का चित्र प्रस्तुत करता है, जो अपने विशाल पंजों में सबको दबा देता है -

"प्रतीक्षा मात्र सत्य है और उसे ढो रहा है पूरा महादेश
नदियाँ बह रही हैं अविराम-औषध दोहरा रहे हैं
मंत्र-एक कमन्द पर कूदेगा कोई गौरिल्ला और
अपने विशाल पंजों में दबा लेगा तमाम इमारतें, यंत्र,
हवाएँ और ध्वनि-यान ।"[2]

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 35.
2. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 39.

"निर्मिति" कविता में नरमुंड पहने वैतालिक के द्वारा कवि विसंगति का सही अंकन करते हैं -

"एक गहरा तालाब मेरे अन्दर में उतर गया है
चक्करदार सीढ़ियों में नरमुंड पहने घूम रहा है वैतालिक
महाकाव्य की सीढ़ियों में एक युग्म प्यार करने की
निष्फल चेष्टा में
दम तोड़ रहा है और उसकी सिसकियाँ आकाश में तैरती-
चिड़ियों के
परों में फँस गई हैं ।"[1]

अकविता में प्रयुक्त नए-नए प्रतीक

अकविता ईमानदारी से जीवन की वास्तविकता पर बल देती है । बदली हुई काव्य-मानसिकता तथा परिवेश की विद्रूपात्मकता अकविता में प्रतीकों की नवीनता का समर्थन करती हैं । "अवचेतन एक फ्लैश" में कवि लिखते हैं -

"और मेरा मन
किसी उच्छ्वास की रेंगी हुई
परछाइयों सा
सिमट जाता......।"[2]

मन को उच्छ्वास की रेंगी हुई परछाई कहने से उदासी, एकाकीपन और भी स्पष्ट हो जाता है । "अनिश्चय की गुहा" में कवि

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 16.
2. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 90.

लिखते हैं -

"एकाकी जीवन के तीक्ष्ण प्रहारों ने
मेरे डैने काट दिए है,
मैं परकटे-पक्षी सा
छटपटा रहा हूँ
तड़प रहा हूँ ।"[1]

एकाकी जीवन के प्रहार से कवि बहुत परेशान हैं । उसको प्रकट करने में "परकटे पक्षी" का प्रतीक सफल है । वे अपनी छटपटाहट और तड़प से मुक्त होने की बात सोचते हैं । वे आगे लिखते हैं -

"एक अनिश्चित दिशा में धूमकेतु सा बढ़ रहा हूँ मैं ।"[2]

धूमकेतु अमंगल का सूचक है । अनिश्चित दिशा में उसका बढ़ना संपूर्ण बदलाव की चाह की सूचना देता है । सबेरा कवि को बूढ़े गीध सा है -

"सबेरा एक बूढ़े गीध सा पर फैलाकर आसमान से उतरता है
और काले डैने फैलाकर सीने पर पसर जाता है ।"[3]

बूढ़े-गीध रूपी सबेरे का आसमान से उतरना र काले-डैने फैलाकर सीने पर पसर जाना प्रतीकात्मक है । काला-डैना एक र कवि के मन के आतंक का सूचक है तो दूसरी ओर रात के भयावह अन्धकार संकेत भी देता है । अन्धकार का जिक्र जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में बार र हुआ है -

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 37.
2. विजप, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 52.
3. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 31.

"इन अँधेरी गलियों में भटकते-भटकते मेरा कबन्ध टूट गया है ।
हाथ कन्धों से लटककर जाँघों में समा गये हैं । अन्धेरे में आँखें
केवल बर्फीली चट्टानों पर धुंधली चाँदनी में गुम हरीकेन सी
छटपटाती हैं और "खंड-खंड होकर बाजुओं में चिपक जाती हैं।"[1]

"खंडित अहं" में वे लिखते हैं -

"मैं एक कटे हुए पेड़-सा
पड़ा हूँ निश्चेष्ट
और हो रहा हूँ चेतना शून्य ;
इन काष्ठ-मूर्तियों और डोम तथा शवनियों के नगर में
डोलते हैं सर्प
हा-हा-हा कर हँसते हैं मुर्दे
और मेरा अनिश्चय
मजार में ढके हुए मुर्दे-सा निरुपाय होकर छटपटाता है
और ओढ़ लेता है मिट्टी का कफन ।"[2]

ऐसे अनेक सशक्त प्रतीकों का विधान जगदीश चतुर्वेदी की अकविता में है जो कथ्य को अधिक प्रासंगिक बनाता है ।

अकविता के मिथक

जगदीश चतुर्वेदी की अकविता-दौर की कविताओं में मिथक का प्रसंगानुकूल प्रयोग हुआ है । कवि-मन कभी-कभी अपनी शक्ति का अन्दाज़ा

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 13.
2. वही, पृ. 38.

लगाता है और महसूस करता है

"मैं गरुड हूँ
कई गहरी घाटियों में बिचरता
झील, समुन्दर पार करता
अपने देश लौट आया हूँ ।
मैं कवच हूँ
अपनी संचित कामना कल्पना का ।
तुम्हारे सरकंडों के तरकसों से
मेरी हत्या न होगी,
मुझे मारने कोई गांडीव जैसा
वेगवान तूणीर चाहिए ।"[1]

"आत्म विघटन" में जगदीश चतुर्वेदी अपने सीमित-दायरे तथा परिवेश के दबाव को सही ढंग से पहचाने हुए आदमी लगता है । वे जीवन के अन्तर्विरोधों का पर्दाफाश करते हैं -

"नीत्शे का परमात्मा उसके साथ मर गया, मेरा ज़िन्दा है
मेरे देश का शिवलिंग तमाम मर्यादाओं का फंदा है
सारे के सारे बुद्धिजीवी दोस्त लगाते हैं ऊब की आवाज़ सरे आम
पर चीखने से कभी नहीं बदलती बुद्धि-
दुर्वासा के श्राप से ग्रसित अब
हो गये हैं निष्काम, अंधे और बेजान.....।"[2]

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 18.
2. वही, पृ. 22.

निष्क्रियता का जाल ओढ़े हुए लोगों की ओर इशारा करने के साथ साथ जगदीश चतुर्वेदी अपने भीतर के कुंभकर्ण की बात करते हैं -

"एक कुंभकर्ण मेरी आस्तीनों में अपनी मूछें फँसा गया है
और मैं अपने मुख के बजाय उस नकली और विद्रूप से भरे
मुख से हँसता हूँ..... कहकहे लगाता हूँ ।"[1]

भरत के मिथक से कवि जड़ता और निसंगता को वाणी देते हैं -

"तमाम लोग प्रेम करने के बाद आत्महत्या कर लेते हैं
मैं हत्यारत क्रमों में बेजान कंपन महसूस करता हूँ
किन्हीं अचिंतित कारणों की खोज में रहता हूँ परेशान
और तुम जड़ भरत सी मूक रह जाती हो निर्विरोध-
पत्थर की प्रतिमा सी आवाक् ।"[2]

जटिल से जटिलतर होती हुई स्थिति को सुधारने के लिए चालाकी और पराक्रम की आवश्यकता है । जगदीश चतुर्वेदी "आत्म विश्लेषण" करते हैं -

"मैं इस कपट नगरी में बनकर रहना चाहता हूँ मायावी पिशाच
या कौटिल्य
या अहिरावण ।"[3]

"अपने देश के लिए" कविता हिन्दुस्तान के प्रति कवि के आक्रोश का परिचय देती है -

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 48.
2. वही, पृ. 81.
3. वही, पृ. 55.

"हिन्दुस्तान तुम कायर की औलाद हो
हिन्दुस्तान तुम उस कपटी की सन्तान हो जिसने हमेशा
विभीषण और जयचन्द पैदा किए हैं ।
हिन्दुस्तान तुम्हारा शरीर सदियों के कोढ़ से भिंधा है
हट जाओ मेरे सामने से पिचके कपाल
मैं तुम्हें देखकर शर्म से झुक जाता हूँ ।"[1]

मिथकों का प्रयोग हर कहीं अहितकर-संदर्भ में हुआ है । वास्तविक मिथकीयता को भी तोड़ना कवि का उद्देश्य है । इसलिए नए मिथक-पात्रों एवं नए मिथक-संदर्भ भी अपनाए गए हैं ।

कविता के भीतर नए-रूप को तलाशने की प्रवृत्ति

आधुनिक कविता अपने भीतर विविध कविता-रूपों की तलाश करती है । यह काव्य-रूप की तलाश गह नहीं है । लंबी-कविता का इस संदर्भ में काफी महत्व है । एक सामान्य लंबी-कविता अगर विषयवस्तु के स्तर पर व्यापक जीवन संदर्भ से संबंधित है तो उसके अनुरूप जीवन-संघर्ष के विभिन्न पक्ष कभी स्पष्ट कभी अस्पष्ट तरीके से विवृत होते हैं -

"मैं एक ऐसी सल्तनत में पैदा हुआ था जिसके चारों
ओर पहरा था - तलवारों और तोपची और बल्लमबाज
मेरी आँखों पर पैदा होते ही कनटोप चढ़ा दिया गया
एक अरसे तक मेरी दृष्टि कैद रही एक जंगल में ।

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 55.

काली कोठरी की सूराख से केवल वही मेरा अस्तित्व
था - मेरा संसार, मेरे सोचने और जीने की परिधि ।"[1]

"कीचड में लथपथ विदूषक" जगदीश चतुर्वेदी की एक लंबी-कविता है । इस कविता में वे अपने पिसते हुए अस्तित्व को स्पष्ट करते हैं । "एक लंगडे आदमी का बयान' की पंक्तियाँ हैं -

"नींद में ऊँघते हुए देश और गाफिल बने हुए अनंत शहरों में
एक लंगडा आदमी घूमता है हताश..... आँखें भटक जाती हैं
छोडकर वृत्त, खो जाते हैं ख्यालों के जंगल, बजती रहती है
कहीं दूर एक सितार की धुन...चीखते हैं लोग सुनते
नहीं हैं वे अल्लाखाँ का तबला या शिप्ले का गिटार ।"[2]

हताश होकर घूमनेवाले लंगडे आदमी का बयान जीवन की विसंगति तथा देश की निष्क्रियता की ओर इशारा करता है -

"तीसरा युद्ध आँखों के सामने हो रहा है और चुप है
सारा महाद्वीप - न कोई बोलता है, न चलाता है
हाथ-पाँव । औरतें करती हैं इन्तज़ार पर नहीं आता
कोई करने प्रेम या व्यभिचार ।"[3]

जीवन के व्यापक संदर्भ से जुड़ी हुई ये विकृतियाँ एक ही तरह से संगुफित नहीं हो सकती हैं । व्यक्ति के भीतर कभी महाकाव्यात्मक फलक को उतारने की प्रवृत्ति प्रायः आधुनिक कविता में लक्षित होती है ।

"मैं वनमानुषों के सतह शहरों में आग लगाकर
इतिहास की तीनता को कंधों पर लादे

---

1. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 18.
2. वही, पृ. 38.
3. वही, पृ. 39.

एक मुर्दे के टीले पर चढ़ जाता हूँ
और इतिहास के अन्तिम पृष्ठ पर
लाश के काले लहू से
अपना नाम लिखकर
उस नारी-शव को खंडहर में फेंक देता हूँ ।"[1]

समय के ज्वलंत एवं जटिल यथार्थ को अधिक से अधिक समेटने की प्रवृत्ति लंबी कविता की पहचान है ।

लघुकविता का प्रभाव अत्यंत तीव्र है । प्राय: लघु कविता भावना प्रधान है, प्रगीतात्मक है । लेकिन जगदीश चतुर्वेदी ने अपनी छोटी कविता में इस गीतात्मकता तथा भावना की प्रधानता को कम महत्त्व दिया है । अपनी उलझी संवेदनाओं की सच्ची अभिव्यक्ति उनकी छोटी कविताओं में हुई है -

"हवा चलती है
और पत्ते झर जाते हैं
बिना कुछ पाये ही
हम मर जाते हैं ।"[2]

लेकिन उनकी संवेदनशीलता का परिचय देनेवाली कविताओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता -

"कल रात मुझमें उग आये दो पेड़
कैक्टस और गुलाब
दो छोटे-छोटे हाथ

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 52.
2. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 42.

बड़ी रात गए तक
दरवाज़ा थपथपाते रहे ।"[1]

इस तरह लंबी-कविता और लघु-कविता जगदीश चतुर्वेदी की अकविता-दौर की एकउपलब्धि ही सिद्ध होती है, जो अनुभूतियों की वास्तविक अभिव्यक्ति में सक्षम है ।

परवर्ती-कविता की भाषा

जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती कविताएँ अकविता की आक्रोशी-मुद्रा और नकारात्मकता से मुक्ति की घोषणा देती हैं । नकारात्मकता इस दौर की कविता की खासियत है । उनकी कविता-मानसिकता में जो बदलाव आया है, उसका प्रभाव भाषा पर भी पड़ा है -

"जिन वादियों से आया हूँ
उनमें थे फूल
वसंत
स्मृतियाँ
और बार-बार जीने की ज़िद ।
अब जिस वादी में जाऊँगा
वहाँ होगा एक नीला विस्तार
अनंत शान्ति
और तृष्णाओं का मधुर-अंत ।"[2]

---

1. इतिहासवेत्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 64.
2. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 96.

नीला विस्तार, अनंत शान्ति और तृष्णाओं का मधुर-अंत वास्तव में जीवन-सच्चाइयों पर उनकी आस्था का सूचक है । पहले जो सजगता उनमें थी, उसका स्थान सहजता ने ले लिया है ।

"सोना बिखेरते हाथ" में कवि जाति और धर्म से ऊपर उठकर मानवीयता को काफी महत्व देते हैं । सरल शब्दों के माध्यम से कवि इस मानवीय आस्था की सूचना देते हैं -

"इनकी कोई जाति नहीं है
इनका कोई धर्म नहीं है
इनका धर्म दूसरों को रोटियाँ देना है
इनका धर्म दूसरों की खुशियाँ संजोना है ।"[1]

दूसरों को रोटियाँ देना और दूसरों की खुशियाँ संजोना अपना धर्म समझनेवाले कृषकों का वर्णन कवि की मानवतावादी दृष्टि का दृष्टांत है । कवि ने सपाट-शब्दावली के भीतर एक खास प्रकार की संश्लिष्टता लाने का कार्य किया है जो कि समकालीन काव्य-प्रवृत्ति है ।

व्यर्थ की चीख पुकार से मुक्त होने की कवि की इच्छा "नए मसीहा का जन्म" कविता में ज़ोर पकड़ती है -

"पर यह सारी चौंक पुकार है व्यर्थ और इससे कोई भी
व्यवस्था की ईंट नहीं हिलती । अब हमें तैयार करने हैं
कुछ ऐसे हाथ जो शहीदों की तरह लपलपाती लौ पर
हथेली रखकर क्रान्ति की शपथ लें ।"[2]

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 53.
2. वही, पृ. 60.

लोक-दृष्टि का विकास जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती-कविताओं में देखा जा सकता है । जीवन के साथ जुड़ाव को सूचित करनेवाली कविताएँ इस दौर में जो लिखी गईं उनमें लोक-दृष्टि के अनुकूल-भाषा का प्रयोग भी हुआ । मालवे का संगीत में वे लिखते हैं -

"इतिहास साक्षी है यहाँ के सरोवरों में कमल खिलते हैं
और भूख से कोई भी नहीं मरता
यहाँ की मिट्टी सोना बिखेरती है
और यहाँ की धरती खिन्नरियों और अप्सराओं की
खिलखिलाहटों से गूँजती है ।"[1]

परवर्ती कविता की बिंब-योजना

जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती कविताओं का दौर विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है । अतीत के प्रति नकार की मुद्रा को अपनानेवाला कवि अब महसूस करता है कि अतीत की स्मृतियाँ सुखद हैं । "मालवे का संगीत" उनकी स्मृतियों का जो बिंब प्रस्तुत करता है, वह बिलकुल ताज़ा है -

"उज्जैन की गलियों में कालिदास की सुन्दरियाँ हैं
फूलों के गजरे हैं युवा मालिनें हैं
एक मादक सुगंध है
केले के पत्तों पर रेशमी वस्त्र पहने
मिष्टान्न खाती साधुओं की कतारें हैं ।"[2]

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 45.
2. वही, पृ. 44.

उज्जैन की स्मृतियों को ताज़ा करनेवाले दृश्य कवि के मन को आनन्दित करते हैं । ये स्मृतियाँ वास्तव में उज्जैन की सांस्कृतिक-गरिमा का प्रक्षेपण करने के साथ-साथ उनसे कवि के सरोकार का भी सशक्त अंकन करती हैं ।

जगदीश चतुर्वेदी की लंबी कविता "इतिहास के अन्धेरे में-वसन्त की तलाश" का इस संदर्भ में विशेष महत्त्व है । कवि अतीत की स्मृतियों में मग्न हैं -

"कितनी स्मृति की कंदरायें हैं
जिनमें इतिहास का जहरीला सर्प
अपनी जिह्वा लपलपाता है
कितनी अतीत की गुहायें हैं
जो उसे लील जाने को
अजगर सा लंबा मुँह खोलकर
सामने खड़ी है ।"[1]

कवि की स्मृति में इतिहास की घटनाएँ रह-रहकर आती हैं । ये स्मृतियाँ कवि को दु:खद लगती है । ज़हरीला सर्प और अजगर भीषणता का सूचक है ।

जगदीश चतुर्वेदी की कविता, चाहे वह जिस दौर की भी हो, की पहचान उसमें गुँफित अकेलापन की भावना है । "वसन्त को छुआ" कविता में एकाकीपन का बिंब सहज ही उभर आता है -

---

1. आखिरी दशक की लंबी कविताएँ, सं. नागेश्वरलाल, रमणिका गुप्ता, पृ. 23.

"मैं ने जब वसन्त को छुआ
तो दिशाएँ गाने लगीं
झूमने लगीं सरिता में डूबी लताएँ
और
एक अकेली चिड़िया
डाल से उछली
और जंगल में चल पड़ी
खोजने एक नया साथी
एक नयी आवाज़
एक नया घोंसला ।"[1]

अकेलापन के एहसास के साथ ही साथ नया साथी, नयी आवाज़ और नया घोंसला कवि की बदली हुई मानसिकता का परिचय देते हैं । वसन्त को छूना भी उनकी आशावादी-दृष्टि का सूचक है ।

परवर्ती-कविता तथा प्रतीक-विधान

जीवन में आस्था का स्थान सर्वोपरि है । जगदीश चतुर्वेदी की परवर्ती कविताओं में आस्था-स्वर मुखर होता है । उनकी कविता "नए मसीहा का जन्म" इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है -

"मैं हूँ आक्रोश का नया रूप
शैतान से वाल्मीकि बनता अभिभूत
एक संदेशवाहक, एक क्रांन्तिदूत ।"[2]

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 92.
2. वही, पृ. 61.

अपने समय की धड़कन की सही पहचान तथा समय के साथ वांछित बदलाव की आकांक्षा के कारण ही कवि ऐसे प्रतीकों का प्रयोग करते हैं ।

जीवन के प्रति जगदीश चतुर्वेदी की दार्शनिक मुद्रा का परिचय "आत्मबोध" में मिलता है -

"उसको लगा कि ज़िन्दगी एक टूटा हुआ बरगद का पेड़ है
जो जड़ों से उखड़कर ज़मीन पर पड़ा है
और उसके लंबे जबड़े से कोटर में पड़ा हुआ
वह कराह रहा है ।" [1]

जीवन का सम्यक् अवलोकन करने के पश्चात् ही व्यक्ति ऐसा निष्कर्ष निकाल सकता है । कवि आत्म-विश्लेषण करते हैं और पाते हैं कि डर के साथ उनका रिश्ता अटूट है -

"डर
जो उसकी धमनियों में पसरकर अमरबेला-सा उसको गलाता रहा ।
डर
जिसने एक लंबे सींगवाले पशु-मानव की संज्ञा देकर
वह कराहता रहा ।" [2]

"अमरबेल" प्रतीक प्रभावात्मक है । "लंबे सींगवाले पशु-मानव" मानव की विसंगतता की ओर इशारा करता है ।

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 35.
2. वही, पृ. 37.

परवर्ती-कविता तथा मिथकों का सन्निवेश

जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में मिथक का समावेश यत्र-तत्र हुआ है । उनका मिथक-काव्य "सूर्यपुत्र" इस संदर्भ में काफी उल्लेखनीय है । कर्ण के मिथक को आधुनिक मनुष्य की निस्सहाय विडंबना की प्रस्तुति के लिए उन्होंने स्वीकारा है । उपेक्षित मानव, अदम्य साहस और अपराजेय आत्मविश्वास को कर्ण के माध्यम से वाणी देने का कार्य कवि ने किया है । कर्ण की मानसिक-व्यथा का वर्णन मार्मिक है -

"लगने लगा कि सभी करते हैं आक्षेप
कौन है मेरा पिता यह न बता सकता मैं
केवल यह सच है कि मैं हूँ एक सारथिपुत्र
मेरी नसों में मात्र शूद्रों का खून है ।"[1]

अलावा इसके उनकी कविता में मिथकों का कई संदर्भ प्रकट होते हैं । "आत्मबोध" में कवि जरासंध की बात करते हैं -

"अपराध केवल उसने किये थे लोग कहते हैं
ईश्वर ने उसको कभी क्षमा नहीं किया
और वह उस क्रूर ईश्वर को आदिम यातना देने
अपने आपके पैदा किये जरासंधों से लड़ता रहा ।"[2]

विशिष्ट शब्दों की विशिष्ट मानसिकता

प्रत्येक कवि की शब्द-संपदा में एक खास प्रवृत्ति नज़र आती है वह है उनकी किन्हीं शब्दों या बिंबों या प्रतीकों के प्रति उत्कट झुकाव जो

---

1. सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 40.
2. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 38.

बार-बार प्रकट होती है । लगातार प्रयुक्त किये जाने वाले इन शब्दों तथा प्रतीकों का कविता की मूलभूमि के साथ अटूट संबंध है ।

जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में प्राप्त होनेवाले कुछ खास शब्द इसप्रकार हैं - काला, बूढ़ा, भूतहा, अन्धा आदि । इन शब्दों से वास्तव में एक प्रकार की व्यर्थता का आभास मिलता है -

"तुम ने मेरी आँखों में एक काला सर्प मसलकर फेंक दिया है ।"[1]
"काले डेने फैलाकर सीने पर पसर जाता है ।"[2]
"और काला गौरिल्ला चाटता रहता है कपाल ।"[3]
"एक काली बिल्ली को उसे सौंपकर, मैं भयभीत
कातर आँखें देखना चाहता हूँ ।"[4]
"वमन के ऊपर रोज़ उड़कर आ जाती है एक काली मक्खी ।"[5]
"आती रहती है काले सपाट पहाड़ों से एक आवाज़ ।"[6]
"केवल काले कमरों में गौरिल्ले खाँसते हैं ।"[7]
"दरवाज़ों पर काले पेड़/ काले खुरचे / काली सड़कें
काले कौवे, और उदास मुख पर एक काला तिल ।"[8]

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 19.
2. वही, पृ. 20.
3. वही, पृ. 25.
4. वही, पृ. 33.
5. वही, पृ. 41.
6. वही, पृ. 42.
7. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 22.
8. वही, पृ. 58.

बूढा शब्द भी व्यर्थता का एहसास देता है -

"मुझे केवल एक अनिश्चित घड़ी में
अनायास पा गया एकांत चाहिए और उसके पास मंडराता
एक बूढा सर्प ।"[1]

"बूढे सर्प सा अपनी मृत्यु की बाट देख रहा हूँ ।"[2]

"सबेरा एक बूढे गीध सा पर फैलाकर आसमान से उतरता है ।"[3]

"उधर भागता है जंगलों में एक बूढा रीछ ।"[4]

"याद करता हूँ बचपन तो एक बूढे गीध का चेहरा याद आता है ।"[5]

"कारिंदे का बूढा ऊँट दरवाज़े से गुज़रा ।"[6]

"देता है आवाज़ एक असहाय बूढे गिद्ध-सा ।"[7]

"इतिहास नाम का बूढा गिद्ध उसकी गर्दन में अपने पंजे गड़ाने
लगा था ।"[8]

"गुलहा" शब्द का प्रयोग उनकी कविता में हुआ है, जो निरर्थकता का परिचय देता है -

"मैं केवल एक गुलहा एकांत चाहता हूँ ।"[9]

---

1. इतिहासवेत्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 12.
2. वही, पृ. 13.
3. वही, पृ. 20.
4. वही, पृ. 41.
5. वही, पृ. 54.
6. पूर्वराग, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 115.
7. डूबते इतिहास का गवाह, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 30.
8. वही, पृ. 74.
9. इतिहासवेत्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 11.

"और बॉबी के भुतहे एकान्त से जहर बटोरकर
तमाम देश के निर्वीय प्रकंपन में हलचल चाहता हूँ ।"[1]

"रात को एक बूढा उल्लू पास के भुतहे बरगद पर
बैठकर बच्चों की आवाज़ में रोता था ।"[2]

भुतहा शब्द हमेशा एकान्त से जुड़ा हुआ है । कवि ने अन्धा शब्द का प्रयोग भी बार-बार किया है -

"कोई भी नहीं छू पाता है नींद में डूबे अन्धे पहाड़"[3]

"मुझे एक अन्धे प्यार के पीछे सड़कों पर घूमते शर्म आती है
कहाँ है मेरा अन्धा नर्क, गिरती शिराओं का शोर ।"[4]

"एक काला प्रेत वहाँ अट्टहास कर रहा है
और लील लेगा प्रोत्साहन, वैभव और
मवाद में लिथड़ा अंधा भविष्य ।"[5]

एकाकीपन जगदीश चतुर्वेदी की कविता का मूलभाव है । उनकी कविताओं में ऐकान्तिकता का जिक्र बार-बार मिलता है । उनकी प्रारंभिक कविताओं में हो या अकविता- दौर की या परवर्ती कविताओं में, अकेलेपन की इस भावना का संस्पर्श किसी न किसी प्रकार मिलता ही रहता है । एकाकीपन

---

1. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 12.
2. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 48.
3. इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 44.
4. वही, पृ. 44.
5. वही, पृ. 57.

का यह कोई मोह नहीं वास्तव में उनके जीवन का एक अहम्-पक्ष है । इस एकाकीपन की भावना के कारण बियाबान, एकांत, अकेला, जैसे शब्दों की भरमार है । उसी प्रकार जंगल, रेगिस्तान, जैसे शब्द भी उनकी कविताओं में बार-बार आए हैं ।

"बरसात की अंधेरी रात में बियाबान जंगलों से गुज़रना
एक अजीब-से भय से भर देता है ।"[1]

"वह यह खोजना चाहता है
कि क्या उन तमाम चेहरों में सबसे बदनसीब वही है
निरुपाय और अकेला ।"[2]

ये शब्द वास्तव में व्यक्तिमन के अकेलेपन सूचित करनेवाले ही नहीं, बल्कि यह उस अकेली मानसिकता की अभिव्यक्ति भी है, जो जुझारू है ।

कवि की कविदृष्टि के साथ, उनके व्यक्तित्व के साथ, उनके काव्य-दर्शन के साथ शिल्पगत-वैशिष्ट्य का संबंध है । अत: जब हम किन्हीं विशिष्ट शब्दों या किन्हीं विशिष्ट प्रतीकों का अध्ययन कर रहे हैं तो उसका मतलब मात्र इतना ही है कि हम कविता की तह में जाकर मूल संवेदना के इन तमाम तंत्रों को पहचान रहे हैं । इस अर्थ में जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में समय-समय पर आए हुए वैविध्यों तथा विकास के विभिन्न चरणों का भी महत्व है क्योंकि ये एकप्रकार से हिन्दी कविता के विकास के चिह्न हैं । अकविता के प्रयोक्ता होते हुए भी शिल्पगत-इच्छा से उनकी कविता वशीभूत नहीं है । कहीं भी कोई भी पक्ष आरोपित नज़र नहीं आ रहा है ।

---

1. नए मसीहा का जन्म, जगदीश चतुर्वेदी, पृ.46.
2. वही, पृ.34.

अध्याय : छः

अकहानी और जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ

अकहानी का आरंभ

"अकहानी" नई कहानी के बाद की प्रवृत्ति है । अकहानी का आरंभ अकविता के साथ ही हुआ । नई कहानी के दौर में हिन्दी कहानी में बहुत सारी स्तरीय-रचनाएँ मिलीं और बहुत अधिक कहानीकार भी । यही नहीं कहानी-संबंधी नया विचार-विमर्श भी शुरू हुआ । इन कारणों से नई-कहानी को आन्दोलन तक माना गया है जबकि वह पूर्ववर्ती कहानी का पुष्ट विकास है । इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि नई कहानी ने हिन्दी कहानी के क्षितिज को विस्तृत किया है ।

लेकिन नई-कहानी ने जब एक दशक पूरा किया तो उसने अपने को कुछ रूढ़-दिशाओं में बाँध लिया । कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ, कुछ ऐसे फार्मूले कहानी में दुहराए जाने लगे कि नई कहानी में गतिरोध की स्थिति आ गई । नयी कहानी के चुक जाने की अनेकों ने सूचना दी है । ज़िन्दगी से कटकर इकहरे व्यक्तिगत सत्यों की पुनरावृत्ति नई कहानी की एक सीमा कही जा सकती है । नई कहानी की उपलब्धियों पर विचार करते हुए बच्चनसिंह लिखते हैं -"अपनी उपलब्धियों और ऊँचाइयों के बावजूद भी इस दौर की कहानियों की सीमाएँ दृष्टिगोचर होने लगी हैं । अब समय आ गया है कि हम इस तथ्य को स्वीकार कर नयी दिशाओं की खोज करें, अन्यथा इस दौर के कथाकार भी अपने को उसीप्रकार दुहराने लगेंगे - अंशों में यह होने भी लगता है - जिसप्रकार पूर्ववर्ती पीढ़ी ने पिछली डेढ़ दशक में अपने को दुहराया है ।"[1] अतः नई कहानी के दौर समाप्त होने के बाद बदली हुई संवेदना को

---

1. नई कहानी संदर्भ और प्रकृति, डॉ. देवीशंकर अवस्थी, पृ. 229.

अकहानीकारों ने उजागर करने का कार्य किया है । इन्द्रनाथ मदान के अनुसार नई कहानी के चुक जाने का एक कारण यह है कि "इनकी कहानी में जो वास्तव उजागर होता उसका बोध पहले से इन कहानीकारों के पास होता है । जबकि अकहानीकार इस वास्तव को कहानी के दौरान उजागर करते हैं ।"[1] अकहानी वास्तव का सीधा सामना करती है और उसकी खुली प्रस्तुति करती है । संभवत: स्वयं नए कहानीकारों ने संकुचित होते अनुभव-वृत्त को पहचान लिया था । इसका ज्वलंत प्रमाण है -"नई कहानी की भूमिका" जैसी पुस्तक लिखने के बाद कमलेश्वर ने "सामन्तर कहानी" की भूमिका लिखना शुरू की । यह सिर्फ भूमिकाएँ नहीं हैं बल्कि समान्तर कहानी की विचार-संहिता भी है । सिद्ध यह होता है कि नई कहानी के बदले एक अन्य विकल्प की आवश्यकता महसूस की जा रही थी । समय का बदलाव और संश्लिष्ट होती जा रही स्थितियों ने विकल्प की खोज की । अत: यह कहा जा सकता है कि अकहानी सिर्फ विरोध की कहानी नहीं है बल्कि परिवर्तित यथार्थ की बहुस्तरीय ज़मीनों की तलाश की कथा भी है ।

अकहानी को आन्दोलन नहीं कहा जा सकता । "वस्तुत: अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा किसी तरह के मूल्य-स्थापन का अस्वीकार है ।"[2] अकहानी में मूल्यों की रक्षा या उसका आग्रह नहीं है । अत्यंत निर्ममता से अकहानीकार मूल्यों का नकार करते हैं जबकि पूर्ववर्ती

---

1. आधुनिक हिन्दी कहानी, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 13.
2. हिन्दी कहानी पहचान और परख, सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. 93.

रचनाकार मूल्यों के प्रति एक प्रकार की आत्मीयता बरतते दिखते हैं । "अकहानी का "अ" उपसर्ग केवल विशेषण नहीं, बल्कि वह एक जीवन-मूल्य है । उसमें इस भावबोध द्वारा जीवन की आभासहीनता, अभिव्यक्ति की निरर्थकता, भाषा और भावों की अपूर्णता और व्यक्तित्व की विसंगति को प्रश्रय मिला है ।"[1] अकहानी में अस्वीकार और इनकार का तेवर प्रखर और सशक्त है । वह इसलिए प्रखर है कि उसमें प्रामाणिक अनुभवों की अभिव्यक्ति ही नहीं हुई है, बल्कि अनुभव का खरापन विवृत होता रहा है । "पूर्ववर्ती रचनाकार जिसप्रकार जीवन की वास्तविकताओं को माइल्ड और कलात्मक बनाकर प्रस्तुत करता है, उसीप्रकार जीवन की समस्याओं और अनुभव के परिपाक की प्रक्रिया से गुज़रकर रूपान्तरित कर डालता है जबकि सातवें दशक का रचनाकार सामाजिक समस्याओं, अपनी व्यक्तिगत समस्याओं और रचना की समस्याओं के बीच कोई गैप नहीं पाता ।"[2] रचनाकार की दृष्टि किसी आदर्श को प्रस्तुत करना नहीं वरन् मनुष्य की विसंगति को अपने बहुस्तरीय यथार्थ रूप में अंकित करने की रही है । जीवन की कटुताओं को पूरी तलखी से प्रस्तुत करने का कार्य साठोत्तरी कहानीकारों ने किया है । "वस्तुत: समकालीन कथाधारा अथवा 1960 के बाद की हिन्दी--कहानी मानव विश्वास की आदर्श-कहानी नहीं है, अपितु वह मनुष्य-मस्तिष्क के भीषण संकटबोध की यथार्थ-प्रतीति की कहानी है, जो मानव-पीडन §ह्यूमन सफरिंग§ को इसलिए व्यक्त नहीं करती कि वह कोई प्रदर्शनीय प्रसंग है, अपितु वह सिर्फ यथार्थ-भोग है ।"[3] अकहानी में कलात्मक प्रदर्शन तथा रूढ़िगत व्यवस्था के पुन:स्थापन का नकार परिलक्षित होता है ।

---

1. हिन्दी कहानी का इतिहास, डॉ.लालचन्द्र गुप्त, पृ.37.
2. समकालीन हिन्दी कहानी प्रकृति
3. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि, सं.डॉ.धनंजय, पृ.168.

अकहानी के लेखकों में शिल्प के प्रति कोई विशेषमोह नहीं है । यथार्थ की सीधी प्रस्तुति उनका लक्ष्य रहा है । राजेन्द्र यादव के अनुसार - "सन् 1960 के बाद की पीढ़ी उन्हीं साफ निगाहों से अपने युग के यथार्थ को कहानी में प्रस्तुत कर रही है, जिसके लिए हम सब लगातार प्रयोग और प्रयत्न करते रहे हैं । उसमें न कथानक यानी कहानी बनाने का आग्रह है, न प्रतीकों का मोह । न यहाँ भाषा है, शैली के स्तर पर काव्य की उपमाएँ, बिंब, ध्वनियाँ और संकेत आते हैं, न अतिरिक्त स्थितियों और भावुक उच्छ्वासों का विस्तार..... यह अपने कथ्य को सीधे भोगने-जीने और प्रस्तुत कर देने का यथार्थपरक प्रयत्न है ।"[1] इस दृष्टि से ज्ञानरंजन दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, श्रीकांत वर्मा, गंगाप्रसाद विमल, रमेश बक्षी जैसे कहानीकारों की कुछ कहानियाँ अकहानी की कोटि में आ जाती हैं ।

जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ

जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ अकहानी की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं । उनका रचना-संसार नितांत वैयक्तिक है । लेकिन प्रारंभिक कहानियों में व्यवस्था-विरोध तथा असमानता के विरुद्ध संघर्ष का परिदृश्य स्पष्ट है । धार्मिक वैषम्य तथा जाति-पाँति के ढकोसलों के विरोध में भी उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं । पर इन कहानियों की विषयवस्तु अकहानी के अनुरूप नहीं है । प्रेम संबंधों को लेकर उन्होंने जो कहानियाँ लिखी हैं, उनकी चर्चा काफी हुई है, अकहानी का तलख-एहसास इन में उपलब्ध है ।

---

1. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि, सं. डॉ. धनंजय, पृ. 75.

व्यवस्था विरोध तथा असमानता के विरुद्ध संघर्ष

व्यवस्था तथा मनुष्य का संघर्ष एक चिरंतन समस्या है । जगदीश चतुर्वेदी का प्रारंभिक कहानी-संग्रह "जीवन का संघर्ष" सन् 1954 में प्रकाशित हुआ । उसकी भूमिका में वे लिखते हैं -"आज का नवयुवक प्रेम की कसौटी में कोई नई राह चाहता है - नई मंजिल । वह पुरानी व्यवस्था को जीवन से दूर कर, नूतन मार्ग खोज रहा है ।"[1] जाति-पाँति के संकुचित दायरे से ऊपर उठने तथा मानवीयता को महत्व देने का वे आकांक्षी रहे । पुरानी मान्यताओं की अपेक्षा तथा नए मानवोचित परिवर्तन की वांछा एक सजग रचनाकार का दायित्व है । जगदीश चतुर्वेदी की कहानी "दमन का चक्कर" में शोषण की तानाशाही का पर्दाफाश हुआ है । गाँव छोडकर मांगी तथा सोमा शहर में आसरा पाते हैं । मिल का नौकर होकर पति मांगी ने चैन की साँस ली । पर मिल मज़दूरों के वेतन में कटौती आयी । भुखमरी ने मांगी तथा उसके सहयोगियों को मालिकों के विरुद्ध आवाज़ उठाने को बाध्य किया । इसका अन्त खून-खराबे में होता है । मांगी बचता गया, पर वह पागल सा हो जाता है । उसने सोचा -"गाँव की उन सब्ज हवाओं में उसे यह ताण्डव-नर्तन देखने न मिला था । वहाँ इन्सान का खून इतने सस्ते रूप में नहीं खरीदा जाता था । बेदाम..... मुफ्त.....। इतने में ही हाथ में बच्चे की लाश लिये धाड़ मार कर रोती सोमा ने प्रवेश किया । वह अंदर आई और गिर पड़ी । उसके कपड़े तार-तार हो चुके थे । गोरी-गोरी मांसल भुजाओं व वक्ष पर नीले-नीले निशान बने हुए थे ।"[2] शोषक हमेशा अपने

---

1. जीवन का संघर्ष, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 2.
2. वही, पृ. 102.

अधिकार का उपयोग करता है । शोषितों को रौंद कर उन्हें वाणीहीन कर देता है ।

मांगी की हालत एक साधारण मज़दूर से तनिक भी भिन्न नहीं । तालेबन्दी हो गई और मांगी के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ जाती हैं । थाने से भारी जुर्माना वसूल कर ठोकरें मार उसे निकाल दिया गया । जुर्माने की रकम घर के एक-एक बर्तन बेचकर उसकी पत्नी सोमा ने अदा की । मज़दूर-बस्ती की फाकाकशी में मांगी का दिन बीत गया और सोमा तेपदिक का मरीज बन जाता है । मांगी अकौवा का दूध पीकर संसार की तमाम मुश्किलों से दूर चल बसता है । शोषण के तंत्र को उसकी भीषणता में प्रस्तुत करना तथा व्यक्ति के यथार्थ को तहस-नहस करनेवाली सामाजिक स्थिति का परिचय देना इस कहानी का लक्ष्य है ।

"वैभव का त्याग" ज़मीन्दारी अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष की कहानी है । भावुक और किशोर रामू का आचरण ज़मीन्दारी व्यवस्था के प्रति कथाकार के विरोध का परिचय देता है । अनाथ रामू का पालन-पोषण ज़मीन्दार करता है । ज़मीन्दार जालिम सिंह के यहाँ नाच-गान हो रहा था । रामू की जनेऊ होनेवाली थी । वह बहुत सज-धज के नाच-गान देख रहा था । लेकिन वह नाखुश था । क्योंकि इधर नाच-गान और उधर पड़ोसी लखनवा की औरत भूख से मर रही थी । रामू दुखी था कि -

"उसकी जनेऊ के लिए मार-मार कर कर्ज के रूपए व गहिने लखनवा की औरत से छिनवा कर वसूल किये गये थे । जनेऊ के उत्सव में रामू को नाच-रंग में, बात-बात में लखनवा व उसकी औरत की रोती तस्वीर दिखाई देती ।"[1] वह ज़मीन्दार के विरुद्ध किसान आन्दोलन का सूत्रधार बन जाता है । अन्नदाता किसान अपने घर में दाने-दाने को तरसता है । रामू का मन विद्रोह से भर उठता है और उसने शहरी विद्रोह को गाँव में भड़काने का नेतृत्व किया । ज़मीन्दार क्रुद्धित होकर उसे खूब पीटता है । रामू उधर से चला जाता है । वैभव त्याग कर वह सत्य की ओर प्रस्थान कर जाता है ।

"जीवन का संघर्ष" का नायक राकेश धार्मिक कट्टरता का विरोधी है । सामाजिक वैषम्य को तोड़ने तथा तानाशाही शासक और शासन को समाप्त करने की अदम्य चाह राकेश में है । उसने सोचा -"एक ऐसा समाज बने, जहाँ ऊँच-नीच के बन्धन न हो, स्वामी-सेवक का मिथ्या-भेद न हो, मालिक मज़दूर में समानता हो । सांप्रदायिकता का जहां पर्दाफाश हो जावे । जाति की व्याख्या एक फिरके तक ही सीमित न रहे ।"[2] बिना परवाह किये उसने नवयुवकों को जागृत कर संघर्ष करने का निर्णय लिया । इतने में उस पर शादी का दबाव डाला गया । उसे मालूम हुआ कि वह बेचा जा रहा है । उसे अपनी सहेली रजनी का पत्र मिलता है और उसमें सूचित है कि वह पढ़ाई छोडकर दीन-दु:खी किसानों और मज़दूरों को सुधारने में तैलंगाना जा रही है ।

---

1. जीवन का संघर्ष, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 24.
2. वही, पृ. 11.

"और जब कुछ दिनों बाद शहनाई बजी थी राकेश के यहाँ, रंग-रोगन से पुता था बंगला, तो वह भाग गया था दूर तेलंगाना की ओर । जहाँ जनता का भूखा-नंगा व दीन समुदाय उसकी राह देख रहा था । जहाँ रमनी का प्यार संघर्ष में अपने साथी की बाट जोह रहा था ।"[1]

असमानता तथा शोषण के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करने तथा व्यक्तिगत मामलों को नज़र अन्दाज़ करने का कार्य यहाँ विशेष ध्यातत्य है ।

"खुदा की आवाज़" एक ओर विभाजन के रक्तपात और भयानक मारकाट का दस्तावेज़ है तो दूसरी ओर धार्मिक कट्टरता तथा सांप्रदायिकता के ऊपर मानवीयता की विजय की कहानी है । कलकत्ता की यात्रा के दौरान रिहाना से सुधीर की मुलाकात होती है । सुधीर दुनिया की निर्मम गतिविधियों से बहुत दु:खी है । वह अपने मित्र से कहता है -"कामरेड, यह तो ठीक है किन्तु आजकल चारों ओर यह रोटी की समस्या और उसके ऊपर मानवता की यह घोर दुर्दशा । मानव-मानव के रक्त का शोषण करने को अग्रसर रहता है । मैं ने कलकत्ता स्टेशन से यहाँ तक आते-आते चार ब्लेड केसेज़ देखे । यह दानवता का नग्न नृत्य है ।"[2] वह अनुभव करने लगा कि शांति सब कहीं नष्ट हो रही है ।

---

1. जीवन का संघर्ष, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 19.
2. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 25.

रिहाना के पिता डॉ. खान हिन्दुओं पर हमला करने की बात सोचता है । मुस्लिम बस्तियों में जो हमला हुआ, वह उसका बदला लेना चाहता है । रिहाना को जब इसका पता चलता है, तो वह सुधीर को सूचना देती है । रिहाना के पिता को हमलावरों से बचाकर सुधीर अस्पताल ले चलता है । जब वह होश में आता है तो कहने लगा -"शायद मुझे कोई अल्लाह का ही पैगम मिल गया, वरना, मैं तो हमेशा को जुदा हो चुका था ।"[1] सुधीर को अपना रक्षक जानकर वह बहुत खुश होता है । कहानीकार ने रिहाना तथा सुधीर का प्रेम, रिहाना की खुदकुशी करने की कोशिश आदि का उल्लेख किया है । सुधीर रिहाना को भी बचा लेता है । डॉ. खान सुधीर को अपनी पुत्री सौंपकर आश्वस्त होता है । उसके प्रेम को खुदा की आवाज़ भी मानता है ।

एक आदर्शात्मक कहानी होने के बावजूद भी "खुदा की आवाज़" मानवीयता की महत्ता की घोषणा करती है । जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है - "द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जो भयावह यंत्रणा यूरोप के देश भुगते रहे थे, उसकी प्रतिक्रिया भी मुझ पर हुई है । इसी समय मैं ने ऐसी कहानियाँ भी लिखीं, जो धार्मिक, वैषम्य एवं जाति-पाँति के ढकोसलों के विरोध में थी ।"[2] समय और समाज के अन्तर्विरोध को रेखांकित करना कहानीकार का उद्देश्य है ।

प्रेम-संबंधों का नया तेवर

प्रेम -संबंधों को विषयवस्तु के रूप में स्वीकारने की प्रवृत्ति

---

1. आदिम गंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 31.
2. मैं और मेरी कहानी, सं. श्रवणकुमार, पृ. 82.

नई नहीं है । सभी मानवीय संबंधों की तुलना में प्रेम-संबंध अत्यधिक गहन है । हिन्दी की प्रारंभिक कहानियों में प्रेम का जो स्वरूप है, आदर्श से लदा हुआ है । ऐसी स्थिति में प्रेम-संबंध मात्र भावुक रिश्ता रह जाता है । वह भाव तक सीमित रहता है । "उसने कहा था" का लहनासिंह, "पुरस्कार" की मधूलिका, "आकाश दीप" की चम्पा हो या कोई भी चरित्र, प्रेम के संदर्भ में आत्म बलिदान का परिचय देते हैं । इस आदर्श का विरोध हम नहीं कर सकते, परन्तु विरोध किया जा सकता है, उस आदर्श को प्रस्तुत करने के तरीके का । इस दौर की कहानियों में प्रेम का जो स्वरूप है, आदर्श का परिचय उतना नहीं देता, जितना पहले था । "जीवन में जो रहस्यवृत्ति कम हुई, स्त्री-पुरुष का पारस्परिक परिचय कुछ अधिक बढ़ा, उसने कभी-कभी प्रेमियों के पार्श्वचित्र कुछ नये रूपों में भी दिखाये ।"[1]

नई कहानी में प्रेम का स्वरूप सहजता का परिचय देता है । परिवेश की सही प्रस्तुति मूल्यदृष्टि तथा सामाजिक गतिविधियों की तह तक पहुँचने में वह सहायक है । नई कहानी के बाद प्रेम-संबंधों का तेवर एकदम बदल गया । जीवन में व्याप्त विसंगति तथा विडंबना के कारण प्रेम में कर्कशता का एहसास मिलता है । यह समय, समाज तथा व्यक्ति की आकांक्षाओं के भीतरी बिखराव के कारण है । विडंबना से प्रेम को अलग नहीं किया जा सकता । व्यक्ति के भावों को भी सामाजिक स्थितियाँ अपने नियंत्रण में रखकर तोडती तथा मरोड़ती हैं ।

---

1. नई कहानी संदर्भ और प्रकृति. सं. देवीशंकर अवस्थी, पृ. 152.

जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों का समय के साथ सरोकार है । उनका कहना है -"आज बीसवीं सदी के अन्तिम कगार पर खड़े होकर हमें यह सोचना होगा कि यौन-संबंधों में पारंपरिक भारतीय-मान्यताओं के विपरीत पर्याप्त परिवर्तन आ गए हैं और उनका वर्णन या उन स्थितियों से साक्षात्कार निषिद्ध नहीं माना जाना चाहिए ।"[1] उन्होंने परंपरा का कभी विरोध नहीं किया, वे परंपरा से चिपके रहने के पक्षधर नहीं । उन्होंने उन मान्यताओं का विरोध किया, जो आज अप्रासंगिक हैं । समय की मांग के अनुसार अपने को परिवर्तित करना एक सफल रचनाकार का कर्तव्य है । जगदीश चतुर्वेदी की सफलता इसमें निहित है कि उन्होंने अपनी मान्यताओं को समय की वास्तविकता के अनुकूल बदल दिया ।

विवाह और प्रेम-संबंधी नई-दृष्टि

विवाह और प्रेम-संबंधी धारणाओं में अनेक प्रकार के बदलाव आ गए हैं । जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ पारंपरिक मूल्यों को नकारती हैं । मूल्य सचमुच एक अनुभव है, एक धारणा है । उनकी कहानियों के अधिकांश पात्र स्थापित नैतिक मानों पर बुरी तरह चोट करते हैं । शादी हमारी संस्कृति का एक अंग है । पुराने ज़माने में इसे इतनी मान्यता प्राप्त है कि पूरा जीवन ही उस पर निर्भर है । लेकिन शादी-संबंधी धारणाएँ अब बदल गई हैं ।

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 7.

लगातार वर्षों से साथ रहने पर भी बहुत दूरी का अनुभव करने वाले पति-पत्नी आज की एक सचाई है । "फ्लर्ट" कहानी में परेश अपनी पत्नी से अतृप्त है । वह अन्य कई बातों में रस लेता है । अजय उसका मित्र है जो रोज़ नई-नई लड़कियों के संग घूमनेवाला है । वह अजय के साथ मिस सचदेव को देखता है । अजय दोनों को परिचित कराता है । मिस सचदेव साहित्यिक बातें करती है, जो परेश की रुचि के अनुकूल है । परेश के अनुसार विवाह वास्तव में मूर्खता है -"यही तो सबसे बड़ा रोना है मिस सचदेव कि मैं विवाहित हूँ । वैसे विवाह करना अपने आप में बड़ी मूर्खता है । × × × × जीवन के लिए तो बहुत सी चीज़ें ज़रूरी हैं । कहाँ-कहाँ आदमी सिर खपाए ? लेकिन और चीज़ें तो ऐसी हैं कि उन्हें हम छोड़ सकते हैं, जैसे नौकरी, दोस्त, मकान, प्यार । लेकिन ये शादी की ऐसी गिरफ्त बँध गई है हिन्दुस्तान में कि आप एक बार इसमें फँसे कि अमरबेल की तरह चाटकर ही दम लेगी ।"[1] पत्नी के सामीप्य से उसका दम घुट जाता है । वह अपने मुँह का जायका घर जाकर खराब करना नहीं चाहता है । उसके अनुसार - "कोई भी आदमी अपनी मितेज़ को पसन्द नहीं करता । केवल चार-पाँच कच्ची-पक्की रोटियाँ दोनों टाइम खाने और खान-दान चलाने के नाम पर व्यभिचार करने के सिवाय और क्या मिलता है, शादी से ?..... क्या ये ज़रूरी है कि शादी की ही जाए ? और जब हतर की पत्नी न मिले, तब साग-रोटी की बात के साथ कुछ घरेलू बातें की जाए । जैसे हम-आप दोस्त हैं, एक दायरे में मिलते हैं, वैसे ही घूमते-घूमते सारा जीवन कट जाए तो कितना अच्छा रहें ?"[2] कहानी में मिस सचदेव को फ्लर्ट समझकर परेश अपनी कुंठा को

---

1. विवर्त, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 48.
2. वही, पृ. 49.

व्यक्त करता है । पर यह कुंठा भी है और उसकी "फ्लर्ट" कटने की प्रवृत्ति भी । यहाँ विवाह रूपी संस्था का विरोध इसलिए दिखाया गया है कि आदमी का अंतरंग खोखला हो गया है ।

"रम्मीं" प्रेम की सहजता की कहानी है । राकेश तथा रम्मीं की बातचीत शादी-संबंधी नये विचारों का प्रक्षेपण है । रम्मीं शादी को प्रेम की सफलता मानती है । पर राकेश का कहना है -"तो आप शादी को दुनिया की इतनी बड़ी चीज़ समझती है । खैर समझती होगी, मैं तो शादी को एक विडंबना मात्र मानता हूँ । प्यार का बन्धन है शादी, और प्यार कभी भी सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता ।"[1] लेकिन "जीवन का संघर्ष" में राकेश का विचार काफी भिन्न है -"माँ-बाप को खुश करने वह सात चक्कर लगा देना चाहता था केवल, जो कभी भी उल्टे लगाये जा सकते थे । शादी ठेकेदारी नहीं है, कान्ट्रेक्ट नहीं है, वह हृदय की भावनाओं की एकता का ही दूसरा रूप है । स्त्री-पुरुष का भाव-प्रणय ही परिणय है ।"[2]

"सेन्टीमेंटल गर्ल" में किशोर निम्मो से कहता है -"बड़ी धूम-धाम होगी शादी में, शहनाइयां बजेंगी और फिर हमेशा को एक बेजान-पहचान की लड़की से बांध दिया जाऊँगा । खैर, शादी की मंजिल तो अभी दूर थी । पिताजी की हसरत सगाई करने से ही पूरी हो जाए तो उस बन्दर

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 44.
2. वही, पृ. 77.

के नाच की रस्म को पूरी करने की क्या ज़रूरत है - सात बेहूदा चक्कर लगाने की ।"[1] किशोर सगाई के बाद भी निम्मो से प्यार करता है । उसके अनुसार- "प्यार का संकुचित बन्धन है शादी । और प्यार कभी सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता । निम्मो ! मैं ने तुम्हें चाहा, दुनिया तुम्हें आवारा कहती रही । पर मैं इन तमाम किंवदन्तियों के बावजूद भी समझ सका कि तुम्हारे सीने में भी दिल है - नर्म कोमल दिल । मैं तुम्हें प्यार करता हूँ - क्या यह छोटी सी शादी की बाद एक बादल के टुकड़े के समान रवि-रश्मि को रोक सकती है - प्यार को तोड़ सकती है ।"[2] इतने में निम्मो भी खुश होती है । वह बोली -"क्या यह सच है किशोर ? जीवन में जीने को तो प्यार की दो बून्द - एक आश्वासन ही काफी है । अगर तुम इतना ही - ऐसा ही प्यार करते रहो तो मैं दुनिया भूल सकती हूँ ।"[3] वर्जनाओं से मुक्त होने की भावना इन कहानियों में प्रबल है ।

विपिन और अंजो के द्वारा "फ्रीलांसर" में कहानीकार ने प्रेम और शादी को अलग-अलग घोषित किया है । विपिन जानता है कि प्यार से पेट नहीं भरता, वह शिमला में नियमित आय पर काम करने जाता है । उसे बहुत दिनों के बाद अपनी प्रेमिका का पत्र मिलता है । उसकी शादी होनेवाली है । विपिन सोचता है -"अंजो क्या धनी की बीवी बनना चाहती है ? पर ये धनी प्यार करना नहीं जानते । पर अंजो तो नॉवल

---

1. आदमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 92.
2. वही, पृ. 94.
3. वही.

पढ़ती है, भावुक है - वह तो किसी रोमांटिक व्यक्ति से ही प्यार कर सकती है ।"[1] लेकिन अंजो का विचार बिलकुल भिन्न है । अंजली सोच-समझकर ही शादी की बात पक्का कर लेती है -"विपिन कवि है, भावुक है, किन्तु वह जीवन भर फ्रीलांसर रहेगा । और मैं कभी भी पड़ोसिन मिसेज़ सन्ध्या की तरह डायमंड हार न पहन सकूँगी ।"[2] अंजो से विपिन की मुलाकात होती है । वह गंभीर होकर बोला -"यह क्या किया तुम ने अंजो ? तुमने मुझे धोखा दिया ।"[3] अंजो का जवाब है -"मैं ने धोखा तो नहीं दिया विपिन । तुमसे शादी कौन करेगा, तुम से तो प्यार किया जा सकता है कलाकार, तुम फ्रीलांसर है ।"[4] व्यावहारिकता को मूल्य समझनेवाली मानसिकता ने हमारे जीवन के अंतरंग को इस हद तक बदल दिया है कि उसे भी उपभोक्तावादी संस्कृति का अंग मानना पड़ता है । उपभोक्तावाद ने संबंधों पर भी अपना प्रभाव छोड़ा है ।

विवाहेतर प्रेम-संबंध का परिदृश्य

जगदीश चतुर्वेदी की ऐसी अनेक कहानियाँ हैं जिनमें विवाहित जीवन से होकर जीनेवाले पात्र हैं । वास्तव में विवाहेतर संबंध समाज-स्वीकृत मूल्य नहीं है । लेकिन समाज की यह एक वास्तविकता है । इसे प्रेम संबंधों की खुली अभिव्यक्ति कही जा सकती है जो जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों की विशेषता है ।

---

1. प्रेम-संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 129.
2. वही, पृ. 129.
3. वही, पृ. 130.
4. वही, पृ. 130.

"अपसान्न" कहानी का नायक सुनील अपने बचपन की सहेली सुशीला को बहुत सालों के बाद रिश्तेदार के घर में शादी की भीड़-भाड़ में देखता है । सुनील की पत्नी है और बच्चे भी हैं । सुशीला माल बाबू की बीवी है । सुनील को लगता है कि सुशीला अपने विवाहित जीवन से अतृप्त है । इसलिए वह पूछता है -"तुम्हारे मिस्टर से तुम्हारी ठीक पटती है ना ?"[1] इस पर वह चुप रहती है । वह उसे बहुत पास महसूस करता है । इसपर वह तनिक भी नाराज़ नहीं हुई । वह स्वीकारती है -"तुमसे क्या नाराज़ होऊँगी सुनील, मैं तो अपनी किस्मत से नाराज़ हूँ । मेरे पापा ने तुम्हारे पिता जी को शादी के लिए कई बार पत्र लिखे, पर तुम्हारे पिताजी तैयार ही नहीं हुए । उन्हें ज़िद थी कि बहुत पढ़ी-लिखी लड़की चाहिए । मैं ने भी एक बार तुम्हें पत्र लिखना चाहा था ।"[2] वह परे हट गई । "पर उसके हाथ उसके हाथों में और अधिक सख्त हो गए, जिनमें समर्पण की एक अजीब सी बहशी थिरकन थी ।"[3]

"नया अनुभव" का भुवनेश अपनी पत्नी से इसलिए नफरत करता है कि "वह लिखना-पढ़ना तो दूर बात करना भी नहीं जानतीं ।"[4] इसी कारण से शादी-शुदा होने पर भी आरती से विवाह करना चाहता है । उसकी मान्यता है -"मैं भी दो बच्चों का पिता हूँ पर किसी एक बिन्दु पर

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 219.
2. वही, पृ. 220.
3. वही, पृ. 220.
4. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 55.

जाकर हम दोनों एक हैं । हम दोनों वह टूटी परिधियाँ हैं जिनका अस्तित्व एक दूसरे की टूटन का जोड़ है ।"[1] भुवनेश अपने बच्चों को रखने को तैयार है । पर पत्नी को नहीं । उसका विचार है -"उस जैसे फूहड़ के साथ रहना वास्तव में अपने खून के टुकड़ों को जंगली बनाना है ।"[2] आरती के संपर्क से वह बहुत आश्वस्त है । आरती उसकी हर एक आदत को जानती है जैसे पुराना साथ हो ।

आरती का पति साल में तीन-चार बार उसके पास आता है, बाकी समय वह अपनी ज़मीन्दारी में मग्न रहता है । ऐसी स्थिति में आरती तथा पति के बीच कोई आत्मीय रिश्ता नहीं है । भुवनेश की हालत भी इससे भिन्न नहीं । वह अपनी पत्नी की कोई परवाह नहीं करता - "मुझे उससे क्या ? मैं ने उसे दूसरी शादी करने को लिख दिया है । मैं उसकी शादी में ज़रूर जाऊँगा ।"[3] आरती और भुवनेश समाज की कोई परवाह नहीं करते । भुवनेश कहता है -"अभी तो हम साथ ही रहते हैं और शायद हमेशा रहते रहें । पड़ोस में मैं ने कह रखा है कि मेरी पत्नी है । वह भी लिखती है - आरती भुवनेश ।"[4] "नया अनुभव" जीवन की वास्तविकता की प्रामाणिक तस्वीर है । माँ-बाप तथा समाज की इच्छा को महत्व देकर विवाह-संबंध में जुड़नेवाले स्त्री-पुरुष आपस में अपरिचितों का सा व्यवहार करते हैं । उनका हर आचरण यंत्रवत् हो जाता है । अपनी इस कसक भरी

---

1. प्रेम-संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 56.
2. वही, पृ. 56.
3. वही, पृ. 60.
4. वही, पृ. 60.

अवस्था से मुक्त होने की चाह उनमें बलवती है । लेकिन उनमें ताकत नहीं है । "नया अनुभव" में आरती और भुवनेश नए ढंग से सोचते हैं । अपने मित्र किशन से वह राय पूछता है । किशन की राय भुवनेश को बहुत सही लगती है - "यदि तुम अपनी पत्नी का कोई प्रबन्ध कर सके, तो तुम आरती से संबंध रख सकते हो । हमारे मन साधारण आदमियों की इच्छाओं से कुछ हटकर है । हमारी विचारधाराएँ एक खास वर्ग की, टाइप की इच्छाएँ हैं । यदि उनको तुम समाज पर थोप सको तो यह एक नया कदम होगा ।"[1] वास्तव में ये सारी बातें इस कहानी के सच की तरह समाज का भी सच है ।

"डेलिया का फूल" एक ऐसी कहानी है, जो यह साबित करती है कि शादी के बिना भी प्रेम-संबंध संभव है । मिसेज़ दास बहुत उदास है । अकेलापन उसे बहुत उबाता है । वह कहती है -"मि. जोग, आप हमारे यहाँ कभी नहीं आते । कुछ नाविल मुझे भी सजेस्ट करो । किसी तरह दिन तो कटे । आजकल तो इतने बड़े दिन होते हैं कि तमाम दिन सोते रहने के बाद भी बहुत सा समय रहता है । घर में किससे बातचीत करूँ ।"[2] मिसेज़ दास अपनी ऊब की वजह से वास्तव में ज़िन्दगी ढोती है, जीती नहीं । उनकी राय में मनुष्य नियति-चक्र में कोल्हू के बैल की तरह पिसते चले जाते हैं ।

मिस्टर दास मेरठ में मिलिट्री कैप्टन है । दूसरे-तीसरे

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 58.
2. वही, पृ. 88.

महीने आ जाते हैं । अपने पति के स्नेह से मिसेज़ दास वंचित है । उसका पूछना स्वाभाविक है -"क्या आप यह आवश्यक मानते हैं कि पति-पत्नी में प्रेम होना ज़रूरी है ।"[1] मि.जोग के अनुसार -"अधिकतर पति-पत्नियों में प्रेम ही नहीं होता है । सहज सुलभ वस्तु से वैसे भी प्रेम कम हो जाता है ।"[2] पति-पत्नी के अस्तित्व का आधार वास्तव में प्रेम है । लेकिन यह आज एक अनावश्यक मूल्य बन गया है या इसे मूल्य समझा नहीं जाता है । जहाँ पर नासमझी कायम है वहाँ विघटन शुरू होता है ।

मि.जोग तथा मिसेज़ दास आपस में आत्मीयता का अनुभव करते हैं । मिसेज़ दास खुलकर कहती है -"तुम्हारी आँखों में पहली बार ही मैं ने वह चमक देखी थी, जिसे मैं पसन्द करती हूँ । मैं ने तुम्हें देखते ही सोच लिया था कि आई विल हैव दिस ब्वाय ।"[3] यह संबंध सामाजिक दृष्टि से अनैतिक है । जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है -"उच्च मध्यवर्ग की ज़िन्दगी पर लिखी गई कहानियों की स्त्रियाँ वासना की नहीं, दया की इच्छुक अधिक प्रतीत होती हैं ।"[4] मिसेज़ दास अकेलापन से दमघुटकर मि.जोग का संपर्क चाहती है ।

"अनाहूत क्षण" अरविन्द -किंशुक की कहानी है । कालेज के दिनों में वे परिचित हुए थे । अरविन्द का नया पोस्टिंग हुआ मनमाड में ।

---

1. प्रेम-संबंधों की कहानियाँ जगदीश चतुर्वेदी, पृ.88.
2. वही, पृ.89.
3. वही, पृ.91.
4. वही, पृ.8.

एक दिन अपनी कविताओं की प्रशंसा में आये पत्रों में एक किंशुक का भी था । अरविन्द ने एक लंबा सा पत्र लिखा । कभी वहाँ आने का निमंत्रण भी भेजा । लेकिन कोई जवाब नहीं आता है । अरविन्द भी व्यस्त था । डेढ़ साल बाद छुट्टियों में वह घर लौटा । काफी हाउस में किंशुक को अपने पति के साथ देखता है । किंशुक पति का परिचय कराती है -"ओह अरविन्द । तुम तो मनमाड़ में थे । इन से मिलो, मेरे पति मि.कपूर ।"[1] इसके बाद उसने विज़िटिंग कार्ड देकर दूसरे दिन आने को कहा । अरविन्द को देखते ही किंशुक ने कहा -"तुम्हारी बहुत याद आई मुझे अरविन्द । पिछले कई दिनों से मैं तुम्हारी याद कर रही थी । मिले अनायास तुम, आई याद की तरह । मैं ने सोचा था कभी कि अरविन्द के साथ मैं बहुत खुश रहूँगी । पर एक जलजला आया और मैं उस नगर की दुनिया से दूर इन सैनिकों के जंगल में आ गई । × × × × नहीं, तुम अभी मत जाओ अरविन्द । मुझे तुम से बहुत सी बातें कहनी है । मि.कपूर तो आज सुबह ही अम्बाला चले गये है । वे तो अक्सर बाहर ही रहते हैं । और यहाँ भी रहते हुए न रहने के बराबर है । तुम डरो नहीं अरविन्द । मैं तुम्हारी वही किंशुक हूँ । पागल किंशुक, शैतान किंशुक । उसने हाथ पकड़कर अरविन्द को बिठा लिया ।"[2] वह अपने पति से बेहद घृणा करती है । उसे वह पति नहीं मानती एक"हट्टा-कट्टा कसाई" मानती है । घर में आनेवाली नौकरानी तक से उसका संबंध है । वह कहती है -"मैं तुम से प्यार करती रही हूँ और आज भी करती हूँ । इन्होंने एक बार कुचक्र में फँसाकर मुझे बरबाद किया । पर मेरा मन कभी भी इनका न हो सका ।"[3]

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 120.
2. वही, पृ. 122.
3. वही, पृ. 107.

"यूक्लिप्टस के साये" का नरेन्द्र अपने मित्र सतीश से शैली के संबंध में कहता है । "तुम को शायद मालूम हो कि मैं ने उससे तब प्यार किया जब मेरी शादी हो चुकी थी । शादीशुदा इनसान से औरतों की अरुचि हो जाती है । किन्तु उसने मुझे सतीश ! इतना प्यार दिया - यह जानकर भी कि मैं शादीशुदा हूँ - जितना कि मेरी पत्नी मुझे आज तक न दे सकी ।"[1] शैली के पति एक लेफ्टिनेंट था । प्रतिमाह रुपया भेजता था । शैली के मन में उसके प्रति घृणा है । नरेन्द्र औरत पर विश्वास करनेवाला नहीं था, पर शैली की आँखों में उसने पहले प्यार में ही वह कशिश पाई जो अटल है और अलौकिक है । शैली ने ज़हर खाया । वह अस्पताल में थी । नरेन्द्र को देखते ही उसने कहा -"नरेन्द्र मैं अब जा रही हूँ । मैं तुम्हारे प्यार के लिए इतने दिन ज़िन्दा रही । तुम्हारा प्यार मेरी मांग का सिन्दूर और मेरी आबरू है । तुम्हारी कसम मैं ने ज़िन्दगी में तुम्हें ही अपना माना और तुम्हारी सौगात को कलेजे में लगाये मर रही हूँ ।"[2] इन कहानियों में बदलते संबंधों तथा मूल्यों का जो स्वरूप उभरता है वह समाज-स्वीकृत न होने पर भी समाज की वास्तविकता का एक सही परिपार्श्व है । आधुनिक जीवन यांत्रिक अधिक है । यहाँ सब लोग एक प्रकार की दुहरी ज़िन्दगी जी रहे हैं । अकेलेपन का अनुभव संबंधों में नहीं रह गया है । इसलिए प्रेम की बातें करनेवाले इन पात्रों की प्रतिक्रियाएँ या विवाहेतर-संबंध के लिए ललचाई हुई आँखों से प्रतीक्षारत पात्रों की प्रतिक्रियाएँ प्रथम वाचन के अवसर बेढंगी और बेमाना हो लग सकती हैं । पर ये हमारे सामाजिक जीवन की अंतरंग प्रतिक्रियाएँ भी हैं ।

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 107.
2. वही, पृ. 110.

"मुर्दा औरतों की झील" इस संदर्भ में काफी उल्लेखनीय कहानी है । चन्दानी तथा मुनीश का संबंध खास प्रकार का है । मुनीश सोचता है -"चन्दानी क्या है मेरे लिए विदिशा स्टेशन पर हुई छोटी सी औपचारिक मुलाकात और विदिशा से भोपाल आते हुए अनायास हो गई घनिष्ठता । पर मैं अपने झूठ को इतना औपचारिक बना चुका हूँ कि अब अगर उसे ठीक बात मालूम हो जाय तो वह चौंक जाएगी । उसे स्वप्न में भी यह नहीं मालूम कि मैं शादीशुदा हूँ ।"[1] चन्दानी जब नीना की बात कहती है तो मुनीश चौंक जाता है । क्योंकि नीना मुनीश की बहिन की क्लास-फेलो है । वह सोचता है - "उसके साथ मेरी मुलाकात न हो, नहीं तो वह पारिवारिक बातें करने लगेगी कि मैं केवल शादीशुदा हूँ, बल्कि मेरे दो बच्चे भी हैं ।"[2] वह बहुत जल्दी होटल से लौटता है । चन्दानी का जब फोन आता है तो मुनीश सन्न रह जाता है । चन्दानी जब कहती है -"आपने इतना बड़ा झूठ मुझसे बोला । नीना कह रही थी कि आपकी तो दो बेबी....."[3] तो मुनीश बीच में काटकर कहता है -"यानी आज से हमारी तुम्हारी दोस्ती समाप्त । अच्छा अलविदा ।"[4] लेकिन चन्दानी की प्रतिक्रिया भिन्न है-"इसमें दोस्ती क्यों समाप्त, मुझे तो तुम्हारा मज़ाक बहुत अच्छा लगा । सच बहुत सफल नाटक रहा ।"[5] चन्दानी दोस्ती में शादी, बच्चे आदि को बाधक नहीं मानती ।

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 101.
2. वही, पृ. 105.
3. वही, पृ. 107.
4. वही, पृ. 107.
5. वही, पृ. 107.

"वीनस" में पत्नी की बहिन निशी से प्रेम-संबंध रखनेवाला पात्र पत्नी की अनुपस्थिति में बहुत अधिक सुख का अनुभव करता है । निशी के प्रश्न में यह तथ्य निहित है - "तुम इतने उदास क्यों रहते हो ? मैं ने तुम्हें शादी के पहले इतना उदास कभी नहीं देखा । क्या तुम दीदी से खुश नहीं हो ।"[1]

निशी के साथ अपने पति के लगाव का पता लगने के बावजूद कुमुद चुप रहती है । निशी के जाने के बाद वह आगे पारिवारिक प्रसंगों में न पड़ने का निर्णय लेता है । लेकिन कुमुद का कथन उसे सोचने को विवश करता है । वह कहती है - "मुझे मत छुओ, निशी के पास जाओ । तुम्हें शर्म नहीं आई । अगर मुझे किसी मर्द के साथ इस तरह तुम देख लेते तो ज़िन्दा नहीं छोड़ते ।"[2] पति का विचार है - "मैं उससे कैसे कहूँ कि गैर-मर्द के साथ उसे देखकर मैं बुरा नहीं मानता और उसे सहज रूप में ही स्वीकार कर लेता । पर ज्यों-ज्यों उसके रोने की आवाज़ तेज़ होती हुई स्टडी-रूम में सुनाई पड़ रही है, मुझे ऐसा अवश्य लग रहा है कि अगर मैं उसे किसी के साथ देख लेता तो उसकी तरह रोता नहीं, आत्महत्या कर लेता । पर आत्महत्या से भी ज़्यादा महत्व है, उसकी स्थिति में ज़िन्दा रहने का ।"[3]

कुछ ऐसी कहानियाँ भी जगदीश चतुर्वेदी ने लिखी हैं जिनमें विशेष स्वभाव के पात्र मिलते हैं । इस संदर्भ में "अधखिले गुलाब" का विशेष

---

1. विवर्त, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 52.
2. वही, पृ. 56.
3. वही, पृ. 57.

महत्त्व है - "लडकी नहीं, बड़ी सख्त औरत है । मुझे ऐसी ही औरतें पसन्द हैं ।"[1] मिश्रा का यह कथन उसकी लंपटता का प्रमाण है । वह अपने स्वभाव का ब्यौरा देता है -"जगदीप, अपनी तो यही ज़िन्दगी है । आजकल तो रोमा महमूद से इश्क लड़ा रही है । बड़ी भली लड़की है, पहले तो काफी खर्च कराती थी, अब तो खुद ही रुपए -पैसे खर्च करती है । मुझे कुछ भी खर्च नहीं करने देती । बड़ी समझदार है ।"[2] मिश्रा जगदीप को डान्स स्कूल ले जाता है । वहाँ जगदीप पनवेलीवाला के साथ नाचता है । पनवेलीवाला के पूछने पर जगदीप कहता है कि वह मिश्रा को दो वर्ष से जानता है । पनवेलीवाला का कथन मिश्रा के स्वभाव की पूरी सूचना देता है -"बहुत दिनों से जानती हूँ इसे, फ्लर्ट करता है लड़कियों से । खैर, आजकल तो रोमा के चक्कर में है । वैसे इसकी विशेष रुचि तो छोटी उम्र की लड़कियों को खराब करने की है । मैं ने तो इसीलिए इससे बोलना बन्द कर दिया है ।"[3] मिश्रा रोमा से शादी कर लेता है । उसका एक कारण है -"जगदीप तुम जानते हो मैं ने रोमा से क्यों दोस्ती की ? इसलिए कि उसकी बहुत सी बहनें हैं । कम उम्र की बहनें हैं । मुझे ऐसा लगता है कि तीस साल की लड़की प्रेम नहीं कर सकती, वह तो माँ ही बनने के काबिल है । जो शरारत और भोलापन प्यार करने के लिए ज़रूरी है, वह कच्ची उम्र की लड़कियों में ही होता है ।"[4] मिश्रा का विचार काफी अजीब है । वह रोमा से झगड़ता है । इसलिए बहुत उदास है -"मैं अब बहुत टूट-चुका हूँ, इस ज़िन्दगी से । हर लड़की से झगड़ने के बाद ऐसा दर्द पैदा हो जाता है, जिसे अब अधिक नहीं सहा जा सकता ।

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 184.
2. वही, पृ. 184.
3. वही, पृ. 185.
4. वही, पृ. 187.

मैं रोमा से कहूँगा कि वह मेरी बड़ी बहिन बन जाय और डॉली से मेरी शादी करा दो । डॉली से मैं इसलिए शादी कर रहा हूँ कि उससे छोटी दो बहनें और हैं, मुझे तो अधखिले गुलाब अच्छे लगते हैं, और यही मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी है । मैं मानता हूँ इसलिए मैं डॉली से शादी करने को तैयार हुआ हूँ ।"[1] ऐसे, लोलिताएँ पसन्द करनेवाले चरित्रों को लेकर कहानी लिखने के पीछे विशेष कारण है । जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं -"एक ओर जहाँ मुझे दिन रात जुआ खेलनेवाले और मद्यपान करनेवाले दोस्त कभी-कभी आकर्षित करते, वहाँ दूसरी ओर इसी में सदैव निमग्न रहनेवाले उन दोस्तों से मुझे घृणा भी होती । लगता है उनके पास इस विलासिता के सिवा कोई काम है ही नहीं ।"[2]

"शिशुहन्ता" का नायक अपनी प्रेमिका को वास्तव में नहीं चाहता । वह जब कहती है कि वह माँ बननेवाली है तो उसे घोर वितृष्णा होती है । वह कहता है -"मैं तुम्हारे इस पाप के लिए ज़िम्मेदार नहीं हूँ । तुम चाहो तो डूब मरो या कुछ भी करो ।"[3] उसे बहुत दुःखी जानकर वह अपने को न्याय-संगत सिद्ध करता है - "मुझे बचपन से ही बच्चों से नफ़रत रही है । मुझे लगता है बच्चों के बाद अत्यंत आत्मीय आपसी संबंध खत्म हो जाते है ।"[4] वह उदास होकर चली जाती है । अपनी आत्मीयता के नष्ट होने का बहाना बनाकर वह उससे मुक्त होना चाहता है ।

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 188.
2. मैं और मेरी कहानी, सं. श्रवण कुमार, पृ. 83.
3. विवर्त, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 75.
4. वही, पृ. 75.

औपचारिकता तथा मानवीयता का ह्रास

शहरी वातावरण तथा मशीनी सभ्यता में मनुष्य शिष्टाचार को अधिक महत्व देने लगता है । आपसी दूरी बढ़ जाती है । जगदीश चतुर्वेदी की अनेक कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । "भूले हुए कस्बे की याद" लिखने की प्रेरणा की सूचना देते हुए कहानीकार ने लिखा है -"मुझे याद है जब मैं शाजापुर के एक छोटे से कस्बे में, जहाँ मैं बचपन में रहता था, कई वर्षों बाद गया तो वहाँ की चीलर नदी, पहाड़ी रास्ता और मेरे बचपन की भूली हुई एक स्मृति इस तरह जीवंत हो उठी कि मैं ने "भूले हुए कस्बे की याद" में उसको रूपायित किया ।"[1]

बारह वर्ष के बाद बचपन का साथी स्निग्धा से उसकी मुलाकात होती है । उसकी शंका है कि स्निग्धा उसे पहचान पाये या नहीं। वह गाड़ी से उतरा तो लगा कि सबकुछ वैसा ही है । केवल बदल गये मनुष्य । डाक बंगले में सामान रखने के बाद वह स्निग्धा के घर जाने की तैयारी करता है । दरवाज़ा खटखटाया तो स्निग्धा आकर दरवाज़ा खोलती है । वह बहुत विस्मय से देखती है । उसने अपनी माँ से ज़ोर से कहा -"जी, बब्बू आया है । अपने मैनेजर साहब का बब्बू ।"[2] स्निग्धा की माँ ने पूछा -"क्यों रे ? अपनी जी को एकदम भूल गया ? कभी एक चिट्ठी भी न लिखी ? पहले तो यही दिन भर उचका करता था । सुना, अब तो बड़ी नौकरी पा गया है ।"[3]

---

1. मैं और मेरी रचना प्रक्रिया, सं. श्रवण कुमार, पृ. 86.
2. विवर्त, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 13.
3. वही, पृ. 14.

बातचीत इतना औपचारिक हो गई कि उसने अनजाने ही कहा - "मैं तो वैसे ही इधर चला आया । यहाँ एक सरकारी काम से आया था ।"[1] वह सोचने लगा -"इन लोगों के जीवन से मैं कितनी दूर हट गया हूँ कि मुझे ये भी पता नहीं था कि स्निग्धा क्या कर रही है और इनको ये भी पता है कि मेरे दो बच्चे हैं ।"[2] आधुनिक जीवन तथा उसकी तड़क-भड़क हमारे आपसी रिश्तों की ऊष्मलता को एक प्रकार से नष्ट कर देती है । स्निग्धा का अपने पति से जुडीशल सेपेरेशन हो गया है । वह कहती है -"मैं ने ही उसे छोड़ दिया है । वह शराबी था, लफंगा था, और सच तो यह है कि वह सबकुछ हो सकता था, किसी औरत का पति नहीं हो सकता था ।"[3] स्निग्धा के प्रति उसके मन में करुणा की भावना उपजती है । "बहुत रात हो गयी है" कहकर वह जल्दी चला जाता है । स्निग्धा तथा उसकी जी अब भी उसको अपना आत्मीय मानती है । लेकिन वह उनसे मिलता है, औपचारिक ढंग से । पर एक ज़रूरी फासला उनके बीच में बना रहता है । इसलिए ऊष्मलता की इच्छा वैसे इच्छा ही बनी रहती है ।

"विवर्त" कहानी में भी संबंधों का बोझ अंकित है । चौकीदार की लड़की ज़रीना से बचपन में प्रेम करनेवाला, पिता के तबादले के कारण दूर के किसी कालेज से छुट्टियों में घर आता है । चौकीदार की मृत्यु हो चुकी है । ज़रीना शिवपुरी में मास्टरनी है । उसकी बूढी माँ

---

1. विवर्त, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 15.
2. वही, पृ. 16.
3. वही, पृ. 19,

जो पगली सी हो गई है । वह बहुत उदास होता है -"उसको लग रहा है कि कोई संबंध जड़ होकर इतना टूट गया है कि उसे फिर से दोहराया नहीं जा सकता - एक तीस वर्ष की औरत से, जिससे बचपन में केवल भावुकतावश प्यार किया था, मिलना कितना हास्यास्पद है ।"[1] फिर भी वह होस्टल जाता है । वह ज़रीना से कहता है "यहाँ टूर पर आया था । अम्मी ने कहा था, ज़रीना से मिल लेना, सो मिलने चला आया ।"[2] दोनों के बीच का अपरिचय गाढ़ा हो जाता है । प्रिंसिपल से मिलने का बहाना करके वह जल्दी चला जाता है । "उसे लग रहा था कि वह ज़रीना से नहीं, किसी ऐसे व्यक्ति से मिलकर आया है, जिसका कोई अस्तित्व कभी उसके लिए नहीं था । जो मात्र औपचारिक होकर ही सदा उससे मिलता रहा ।"[3]

धन के उन्माद में व्यक्ति अपने पुराने रास्तों को भूल जाता है । गोमी मछुआ टोली की लड़की है । कन्हैयालाल को वह डूबने से बचाती है । उसके मन में गोमी के प्रति प्रेम जागता है । उसने कहा -"मुझे तो तुम्हें भुलाने की कल्पना भी नहीं आई । वह दिन जब मैं मुर्दा लाश था और तुमने मुझे बचाया था, क्या भूल जाने की वस्तु है । मेरे को पुनर्जन्म दिया था तुम ने, नीरस जीवन में एक संजीवनी घोल दी थी गोमी ।"[4] लेकिन वह यह सब भूल जाता है । कन्हैया लाल राशनिंग आफीसर बन जाता है । ब्लैक मार्केट में हज़ारों रुपया कमाकर मालरोड पर एक कोठी बना लेता है । एक पहाड़िन से

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 285.
2. वही, पृ. 286.
3. वही, पृ. 287.
4. वही, पृ. 135.

शादी भी कर लेता है । अस्पताल में राशन बाँटते वक्त एक मैली गन्दी सी महिला ने उसको देखा । लाल ने अपना मुख फेर लिया और कहा कि पागल है । लेकिन डॉ. सिन्हा कहता है -"पागल नहीं दीवानी है । मछुआ टोली की औरतें बड़ी अय्याश होती हैं ।"[1] लाल का मन बहुत उद्वेलित होता है । वह "खो गये विचारों में, कितना प्यार करती थी मुझे । पर उस दिन मैं नाव में ही सोती छोड़ आया था । वर्षों बीत गये इस बात को । अब तो उसकी शादी हो गयी होगी । दर्जनों बच्चे होंगे ।"[2] नौकर से पता चलता है कि एक बीमार औरत उससे मिलना चाहती है । अपने मध्यवर्गीय-बड़प्पन के साथ वह उसे भागने को कहता है । मि. लाल राशन की घूसखोरियों में फँस जाता है । उसकी तबाही होती है । नौकरी से हटाया जाता है । उसके मित्र केवल राग-रंग के साथी थे । उन्होंने मिलना भी बन्द किया । लाल कोई सस्ता मकान खोज रहा था । तभी डॉ. सिन्हा की कार इनके समीप ही रूक गई, बोले -"यार तुम भी बड़े ही तेज़ निकले । गली-कूचों से लेकर महलों तक कद्र है तुम्हारी । कल वो औरत तुम्हारे नाम वसीयत कर गई है । पूरी तीन हज़ार की थैली दे गई है मरते-मरते ।"[3]

जगदीश चतुर्वेदी की कहानियाँ जीवन की खुली स्थितियों की कहानियाँ हैं जिससे कहीं भी अनावश्यक उदात्तीकरण नहीं है । प्रकृतवादी ढंग से उन्होंने जीवन को प्रस्तुत किया है । इसलिए सब कहीं अधूरापन, अजीब अन्दाज़ इत्यादि महसूस होते हैं ।

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 137.
2. वही, पृ. 138.
3. वही, पृ. 138.

जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों की शिल्प-विधि

जब किसी विधा में परिवर्तन लक्षित होता है तो वह भाव तक सीमित न होकर उसके रचना-शिल्प तक व्याप्त होता है । भावों के बदलने का मतलब है कि उसका प्रस्तुतीकरण भी बदलता है । शिल्प को आधुनिक संदर्भ में हम रचना की अन्तर्निहित रीति कह सकते हैं जो रचना की मौलिकता को दर्शानेवाली स्थिति भी है ।

जगदीश चतुर्वेदी अकहानी के प्रवक्ता के रूप में हिन्दी कहानी-क्षेत्र में आ गए । अकहानी ने कहानी के भाव-क्षितिज को बदल डाला है । इसका यह अर्थ भी होता है कि अकहानी के द्वारा हिन्दी कहानी ने नयी शिल्पाभिरुचि दिखाई । इस प्रकरण में यह देखना उचित है कि जगदीश चतुर्वेदी ने किन-किन मानों में हिन्दी कहानी के शिल्प को परिवर्तित किया है।

यह विदित बात है कि जगदीश चतुर्वेदी की प्रारंभिक कहानियों की शिल्प-विधि में कोई नवीनता नहीं है । इसका कारण यह है कि प्रारंभिक कहानियों की विषयवस्तु भी नई नहीं है । एक ओर आदर्श का पलडा भारी है तो उसमें स्थूलता का समावेश है । ऐसी कहानियाँ कोई नई-शिल्प-दृष्टि का परिचय नहीं दे सकतीं । उनको प्रेम संबंधों पर लिखी कहानियों में शिल्प दृष्टि का नया अन्दाज़ मिलता है । यह सही है कि ऐसी कहानियों में संबंधों को नए ढंग से प्रस्तुत किया गया है । स्वीकृत

मूल्यों को झकझोरा गया है । अजीब तरीके से पेश आनेवाले पात्र प्रमुख हो गए हैं । ऐसी कहानियों का रूपबन्ध अकहानी की घोषित धारणाओं के अनुकूल ही है ।

मुख्य रूप से जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों की शिल्प-विधि को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

कथा का वास्तविक ह्रास

कहानी का आदि-मध्य-अंत से युक्त ढाँचा अब नहीं रह गया है । आज के विशृंखलित जीवन में कथानक का ह्रास एक सामान्य सी बात है । नई कहानी के दौर में भी कथा की समाप्ति की ओर आलोचकों का ध्यान आकृष्ट हुआ था । जगदीश चतुर्वेदी की अधिकांश कहानियों में लुप्त हो जानेवाली कथा का एहसास मिलता है । छोटे-छोटे संवाद, छोटा-सा दृश्य आदि कथानक की बुनावट को पूर्ण करता है । यह कथाहीनता कहानी की गति में आई कोई बाधक स्थिति नहीं है । वह आधुनिक जीवन की देन है । जीवन की अस्तव्यस्त स्थिति ने कहानी के कलेवर को इस हद तक परिवर्तित किया है ।

"नया अनुभव" के किशन-भुवनेश की बातचीत संपूर्ण कहानी का आधार है । किशन की भुवनेश से मुलाकात होती है । कैफे के एक कोने में

दोनों बैठ जाते हैं । भुवनेश अपनी पत्नी को किसी न किसी प्रकार दूर हटाना चाहता है । वह तीन बच्चों की माँ आरती से शादी करने का निर्णय लेता है। एक बार के मिलन से कथा की समाप्ति नहीं होती । किशन कहता है -

"प्रभा सेनिटोरियम से वापस आ गई थी । मैं अपनी ज़िन्दगी भूलकर उसको खुश रखने का प्रयत्न करता था। मेरा पोस्टिंग बंबई में हुआ था और अब मैं महसूस करता था कि पिछले रोमांस एक बहस मात्र थे, असली ज़िन्दगी तो रोटी के लम्बे संघर्ष की कहानी है । नियमित ज़िन्दगी हो गई थी, ऑफिस-घर-ऑफिस ।

तभी -

एक दिन भुवनेश टकरा गया । साथ में आरती भी थी ।"[1]

संध्या समय भुवनेश-किशन कैफे में मिलते हैं । पता चलता है कि आरती-भुवनेश साथ साथ रहते हैं । अपनी पत्नी के बारे में भुवनेश का विचार है -"वह बीमार है, शायद जोधपुर में है । मुझे उससे क्या ? मैंने उसे दूसरी शादी करने को लिख दिया है । मैं उसकी शादी में ज़रूर जाऊँगा और सौगात भी दूँगा ।"[2] किशन सन्न रह गया । उसके लिए यह बिलकुल नया अनुभव था ।

"ऑफिस से सीधा यहाँ चला आया था, फिर कभी मिलने को कहकर विदा ली । घर तक रास्ते कैसे कटा, मालूम नहीं । मैं रास्ते-भर

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 59.
2. वही, पृ. 60.

भुवनेश और आरती के रोमांस पर सोचता रहा था ।"[1]

संवाद का संक्षिप्त-रूप कथानक के प्रारूप को विकसित नहीं करता । यहाँ कथानक का अति-संक्षिप्त रूप या विघटित रूप प्राप्त होता है ।

"नर्तकी" कहानी में भी कथानक के ह्रास का आभास मिलता है । "भीगी-भीगी रात, नशीली चाँदनी, ऊपर आसमान पर झूलता हुआ हँसिया जैसा चाँद । सड़क के दोनों ओर चुपचाप खड़े घने मेहँदी के झुरमुटों को सहलाती हुई आती रातरानी के फूलों की सोंधी-सोंधी सुगन्ध- दूर से आती पछुवा हवा के झोंकों के साथ मिलकर मचल रही है ।

दिनेश सुनता चला जा रहा है मौन, उस पहचाने से संगीत के स्वर को । बँगले के सामने ठिठक गया दिनेश । नेम प्लेट पढ़ा । यहीं का बुलाना था उसे । वह फाटक के अन्दर घुसा और गीत की अन्तिम कड़ी रुक गयी । प्रकोष्ठ में प्रवेश किया । घुसते ही देखा पुनःनृत्य प्रारंभ हो गया । दिनेश भी ठिठक गया और अपनी नज़रें नर्तकी पर गड़ा दी । नृत्य करते-करते उसके रतनारे नयन भी सहसा दिनेश पर रुक गये । वह चौंक-सी पड़ी, सिहर गई, पर उसने नृत्य करना बंद न किया । नृत्य चलता रहा, पर दिनेश ने स्पष्ट देखा कि उसकी गति में वह तन्मयता नहीं रहा, जो प्रारंभ में थी ।"

"नर्तकी ने झुककर सबको अभिवादन किया और खास तौर पर दिनेश की ओर देखकर कुछ याचना की, हौले-हौले मुस्कुराकर ।"

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 60.

"बनारस आये दिनेश को एक सप्ताह भी नहीं बीता कि वह फिर अपनी गमगीनी समेट लाया । दशाश्वमेध घाट पर बैठकर गंगा की लहरों से खेलने की सोचकर आया था - अपने को बहलाने - पर आज उसकी उदासी फिर मुस्कराकर खड़ी हो गई सामने । वह घूमता रहा बड़ी देर तक निरुद्देश्य, फिर हॉस्टल लौट आया ।"[1]

दिनेश रजनी को नर्तकी के रूप में देखकर अचंभे में पड़ जाता है । रेस्तराँ में दिनेश बहुत उदास दीखता है । उमेश से वह रजनी के बारे में पूछता है । वह कुछ लटकती सी चाल से चल दिया, उससे मिलने-नर्तकी से ।

रात भर रजनी सो न सकी । "वह रोने लगी मुँह ढककर, संसार में उसका अपना कोई नहीं रहा । दिनेश वह भी छलिया है, कायर, नहीं वह उससे नहीं मिलेगी । हृदय में द्वन्द्व छिड़ गया । निश्चय में उसने अपने ओठ काट लिये ।"[2]

दिनेश रजनी से मिलने जाता है । उसका आश्चर्य देखकर रजनी कहती है -"दुनिया में प्रत्येक इन्सान मज़बूरियों का सामना करता है । उनमें उलझकर कभी-कभी बह भी जाता है । मुझे मेरी मज़बूरियों ने नर्तकी बनाया । कला को मैं ने मूल्य पर रखा, कला को बेचा फिर, फिर.

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 35-36
2. वही, पृ. 38.

दिनेश उस वाक्य को पूर्ण करता है -

"फिर खुद को बेच दिया क्यों ?"

"चुप रहो दिनेश । तुम्हें ऐसा कहते शर्म नहीं आती । उस दिन जब रात के बारह बजे मैं तुम्हारे दरवाज़े पर गई थी मेरे हाथों में थी तुम्हारे बच्चे की मूर्ति । मैं ने कहा था तुम्हारा लाल । तब तुम ने याद किया होगा, मुझे ढकेल कर दरवाज़े बंद कर लिये थे । ज़्यादा सिर पटकने पर तुमने-तुमने ही निर्दयी मुझे क्लोरोफार्म सुंघाकर कार में रख दूर - बहुत दूर जंगल में जाकर पटक दिया था । मैं उठी । सबेरा हो गया था । मेरे बच्चे की लाश भी छिन गई थी मेरे से ।"[1]

दिनेश क्षमा-याचना करता है । अन्त में रजनी कहती है - "रंज न करो जो होना था सो हो चुका । जाओ मेरी अभिलाषा है कि तुम जाकर किसी सुन्दर, विद्वान लड़की से शादी कर लो ।"[2] दिनेश चला जाता है । कुछ दिन बाद इलस्ट्रेटेड वीकली के पृष्ठ पर रजनी देखा - "दिनेश का चित्र अनमना-सा, मुर्झाया-सा, चेहरा लिये एक युवती के साथ, जो खिली ज्योत्सना की तरह कली जैसी नवविकसित नवयौवना थी । दिनेश के चेहरे की मुर्दनी में रजनी को अपना प्रतिबिंब दिखाई दिया ।"[3]

वह उसके यहाँ से चली जाती है । "दिनेश अब वह तुम्हें अलका को सौंपने आई है । यह उसकी अन्तिम इच्छा है ।

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 38.
2. वही, पृ. 39.
3. वही, पृ. 40.

"रात ढल रही थी । सबेरा हो रहा था । शबनम मुस्कुरा उठी जब दिनेश ने पहिली बार अल्का को बाँहों में भींच लिया और उसके प्रकाश में झूम उठा बाहर से आवाज़ आई रजनी की -"मैं जा रहा हूँ दिनेश । सबेरा हो गया है ।[1]

इस तरह कथाहीन कहानी उसकी मूल संवेदना का पूरा एहसास देता है । कथानक का यह ह्रास वास्तव में आधुनिक जीवन खंड दृश्य ही प्रस्तुत करता है । परन्तु खंड-सत्यों में जीवन की अखंडता का परिचय भी है । अत: ह्रास कथानक के विधान का है कथा-गति का नहीं है ।

पात्रों का प्रक्षेपित चेहरा

जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों के अधिकांश पात्रों का आचरण अजीब है । नई कहानी की तुलना में उनके पात्रों की मानसिकता का, उनके व्यक्तित्व का प्रक्षेपण पाठकों को एक प्रकार से चौंकाता है ।

फ्लर्ट कहानी का परेश अपनी पत्नी को चाहता नहीं है । घर से वह बाहर आ जाता है । मिलक बार में अजय से मिलने का वादा है । "बस स्टॉप पर खड़ा खड़ा वह अजय की बहन के बारे में सोचता है । कितनी आबदार है उसकी आँखें, मानो कई समन्दर आँखों में समेट लिए हों । मुझे वे ही आँखें पसन्द हैं जिनमें सपने भरे हों या पुतली के साथ-साथ एक

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ.41.

दरिया-सा चलता हो ।"[1] यहाँ परेश की रुचि का हल्का सा आभास मिलता है । उसका हर आचरण उसके व्यक्तित्व का पर्त-दर-पर्त खोलता है । अजय मिस सचदेव से उसे परिचित कराता है । तीनों कॉफी पीते हैं । परेश खाने को कुछ नहीं लेता है । अजय ने कहा कि शायद भाभीजी ने खासा लंच करा दिया है । तो परेश सोचता है -"बदतमीज़ कहीं का । उसे ये भी नहीं मालूम कि लंच ही सब कुछ नहीं होता, ऐस्थेटिक सेन्स भी कोई चीज़ है । जिसकी मेरी पत्नी में बहुत कमी है । हमेशा मैली-कुचली तुसी-तुसाई धोती पहने तोपे पर बैठी मुस्कुराती रहती है । शादी के बाद तो उसका सौंदर्य-बोध कम होते-होते अब तो रंच-मात्र रह गया है, जैसे घरेलू औरतों को उसकी कोई ज़रूरत न हो ।"[2]

अजय दोनों को छोड़कर चला जाता है । परेश तथा मिस सचदेव की बातचीत से पता चलता है कि दोनों साहित्यिक रुचि रखते हैं । सामने बैठी लड़की गौर से देखने लगी तो मिस सचदेव कहती है -"फ्लर्ट है । देखिए, कैसी भूखी नज़रों से आपको देख रही है ।"[3] परेश महसूस करता है कि देखने से कुछ नहीं बिगड़ जाता । मिस सचदेव के साथ छोड़ने को परेश चाहता नहीं । उसने पूछा -"अब कब मिलेंगी ? मुझे तुम्हारी कंपनी बहुत पसन्द है ।"

वह अपने बालों को बाएँ हाथ से एक खास अदा से हटाती बोली, "कभी भी, आजकल तो मैं अजय के डिस्पोज़ल पर हूँ । आज आपके साथ रहने को उसका इशारा मिल गया था ।"[4]

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 142.
2. वही, पृ. 143.
3. वही, पृ. 145.
4. वही, पृ. 146.

इन दोनों पात्रों पर कहानी में पूरा प्रक्षेपण है । कहानी का समग्र ध्यान पात्रों की मानसिक-गतिविधि पर केन्द्रित है जिससे उनके विचित्र व्यवहार और उनकी असलियत का पता चलता है । पात्र-केन्द्रित यह अवस्था जगदीश चतुर्वेदी की बहुत सारी कहानियों की विशेषता है ।

वीनस कहानी की शुरुआत उसके पुरुष-पात्र की मानसिकता के प्रक्षेपण से होती है -

"किसी किसी दिन सुबह से ही एक अजीब सी उदासी रहती है और तमाम दिन एक मनहूस छाया की तरह करता रहता है । ऐसे में मैं शाम का इन्तज़ार करता हूँ और "एलप्स" में जाकर चन्द घण्टे बिताना चाहता हूँ । पर वहाँ रोज़ के देखे-चेहरे मिलते हैं और तब मैं अधिक मालूम हो जाता हूँ ।"

आज शाम तक मैं उदास रहा हूँ और एक विपरीत दिशा की बस में बैठ कर इंडिया गेट उतर गया हूँ । × × × मुझे रास्ते भर निशी याद आती है और मैं सोचता हूँ कि शायद तमाम मनहूस दिन निशी की याद में बीता है । निशी केवल चार दिन को आई है और फिर चली जाएगी ।

"स्टाप पर उतरकर घर की ओर बढ़ जाता हूँ । सहसा लगता है कि घर में एक अजीब-सी शान्ति होगी और पत्नी का साया सारे कमरे में बोल रहा होगा ।"

"कमरे में मेरी बेबी है और निशी । मुझे अच्छा लगता है ।"[1] निशी पूछती है -"तुम इतने उदास क्यों रहते हो ? मैं ने तुम्हें शादी के पहले इतना उदास कभी नहीं देखा । क्या तुम दीदी से खुश नहीं हो ?" मैं कुछ जवाब नहीं देता । गुमसुम और उदास बना निशी को बाँहों में घेर लेता हूँ ।"[2]

"आजकल मुझे लिखने-पढ़ने से ज़्यादा निशी पसन्द है । वह ज़िन्दा कहानी है । मैं उसके आकर्षण को छोड़ना नहीं चाहता ।" कुमुद के सो जाने पर निशी आ जाती है । "निशी शायद कुछ निश्चय करके आई है । वह अपने हाथों पर मेरे हाथों का दबाव पसन्द करती है । मैं आराम कुर्सी से उठ जाता हूँ और निशी की कुर्सी के पीछे से उसका सारा जिस्म बाँहों में भर लेता हूँ ।"

वह कुछ बोलती नहीं । चुप रहती है । आखिर उसका स्वाभिमान जागता है या शायद क्यारापन और वह कहती है - पागलपन नहीं करते । छोड़िए ।"

मुझे कुछ ख्याल नहीं रहता । तभी निशी की मुर्दा सी आवाज़ सुनाई पड़ती है -"दीदी !.... हाय अब क्या होगा ?"

मुझे भी एक अप्रत्याशित भय छू जाता है । मुझे लगता है कि कुमुद ने हमें देख लिया है ।"[1] निशी को विदा देकर दोनों आते हैं । उसके मन में अपनी पत्नी के प्रति एक आत्मीयता जाग उठती है । "उसके कंधे पर स्नेह से हाथ रखता हूँ पर वह झिटककर हटा देती है और

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 205.

कहती है - "मुझे मत छूओ । निशी के पास जाओ । तुम्हें शर्म नहीं आई । अगर मुझे किसी मर्द के साथ इस तरह तुम देख लेते, तो जिन्दा नहीं छोड़ते । पर एक मैं हूँ कि खून का घूँट पीकर रह गई ।"[1] पुरूष पात्र के चरित्र की वह निकृष्टता इस कहानी में प्रक्षेपित है । उसे कई कोणों से देखा गया है । उसकी मानसिकता की कई भंगिमाएँ यहाँ प्रस्तुत की गई हैं । इस प्रक्षेपण विधि के माध्यम से, जोकि दरअसल फिल्मी-विधि का एक रूप है, व्यक्ति का विश्लेषण ही हुआ है । कहानी की यह शिल्प-दृष्टि कहानी में आरोपित नहीं है । वस्तुत: यह कहानी के पात्र का ही प्रक्षेपण है ।

विवृतात्मक अन्त

विवृतात्मक अन्त कहानी की आधुनिकता प्रमाण है । "आधुनिकता और हिन्दी साहित्य" पर विचार करते हुए इन्द्रनाथ मदान ने इस ओर संकेत भी किया था । जगदीश चतुर्वेदी की तमाम कहानियों का अंत विवृतात्मक है । एकाएक कहानी खत्म होती है । इससे कहानी का गहरा प्रभाव पाठकों पर पड़ता है । उनकी कहानियों का कोई स्वीकृत रूप नहीं है । इसलिए समाप्ति पूर्वनिर्धारित नहीं है । कहानी की वस्तु की यह अपेक्षा भी है कि वह एकाएक खत्म होकर शून्यता का एहसास छोड़ती है ।

"मुर्दा औरतों की झील का पुरूष पात्र विवाहित है । उसे

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 207.

चन्दानी का फोन आता है । कल मिलने का वादा करता है । वह सोचता है -"चन्दानी क्या है मेरे लिए, विदिशा स्टेशन पर हुई छोटी-सी औपचारिक मुलाकात, और विदिशा से भोपाल आते हुए अनायास हो गई घनिष्ठता । पर मैं अपने झूठ को इतना औपन्यासिक बना चुका हूँ कि अब अगर उसे ठीक बात मालूम हो जाय तो वह चौंक जाएगी । उसे स्वप्न में भी यह नहीं मालूम कि मैं शादी-शुदा हूँ ।"[1] चन्दानी और मिसकपूर के साथ वह गर्ल्स होस्टल जाता है । उसे पता चलता है कि नीना आई है । नीना का नाम सुनकर वह चौंक जाता है । नीना उसकी बहन की सहेली है । "मैं चाहता हूँ कि उसके साथ मेरी मुलाकात न हो, नहीं तो वह पारिवारिक बातें करने लगेगी और चन्दानी को यह मालूम होते देर न लगेगी कि मैं केवल शादीशुदा ही नहीं हूँ, बल्कि मेरे दो बच्चे भी हैं । मैं काफी अटपटा महसूस करता हूँ और भागकर हॉस्टल से चला जाना चाहता हूँ ।"[2] पर नीना से वह मिलता है । नीना बहुत बातें करती है । वह चुप रहता है -"मैं इस समय चुप ही रहना चाहता हूँ ; क्योंकि अगर इसे अभी मालूम हो गया तो मैं संकट में फँस जाऊँगा । मैं गर्ल्स होस्टल में हूँ और गर्ल्स होस्टल की हर एक लड़की यह जानती है कि "चन्दानी का जैक" अभी अविवाहित है । अगर इनको मालूम हो गया तो तमाम लड़कियाँ मिलकर मेरी मिट्टी पलीत कर देंगी ।"[3] वह होस्टल से बहाना बनाके बहुत जल्दी चला जाता है । शाम को उसे फोन आ जाता है -

"मैं जाकर रिसीवर उठाता हूँ कि आवाज़ आती है -

"चन्दानी स्पीकिंग"

मैं सन्न रह जाता हूँ । "मैं मुनीश बोल रहा हूँ ।"

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 251.
2. वही, पृ. 256.
3. वही, पृ. 256.

वह कहती है - आपने इतना बड़ा झूठ मुझसे बोला । नीना कह रही थी कि आपकी तो दो बेबी....

मैं बात बीच में काटकर कहता हूँ - "यानी, आज से हमारी-तुम्हारी दोस्ती समाप्त । अच्छा अलविदा ।।"

पर चंदानी हँसती है और कहती है -"क्यों, इसमें दोस्ती क्यों समाप्त, मुझे तो तुम्हारा मज़ाक बहुत अच्छा लगा । सच, बहुत सफल नाटक रहा ।"

कुछ देर बाद वह कहती है -"हलो तुम होस्टल आओ न । हम लोग कल जाएँगे ।

"मैं "अच्छा" कहकर फोन रख देता हूँ । पर कमरे में जाकर जाने की तैयारी नहीं करता, चादर खींचकर फिर सो जाता हूँ ।"[1]

"ड्राइंग रूम की पेंटिंग" का मि. दुबे जाग उठता है । आज उसे मिसेज़ लाल का बुलावा आया है और इस तरह के आमंत्रण ज़िन्दा रहने के लिए बहुत ज़रूरी हैं ।"[2] मिसेज़ लाल एक डांसिंग स्कूल में डायरेक्टर थी । "मिसेज़ लाल ने इधर उससे मिलना छोड़ दिया था । रात उनका फोन मिला था कि तुम्हें एकदम सुबह आना है बहुत ज़रूरी काम है ।"[3] वह करीब बारह बजे मिसेज़ लाल के घर पहुँचा । "वह कुछ कहने ही जा रहा था कि मिसेज़ लाल ने अत्यंत धीमी आवाज़ में, गोपनीय ढंग से कहा -"मि. दुबे, यू आर इंटीमेट टू मी, क्या आप बता सकते हैं कि मिसेज मेहता को क्लिनिक में क्या चार्जेज़ हैं ?" उसे थोडी हैरान हुई । उसे मालूम था कि मिसेज़ मेहता की

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 258.
2. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 109.
3. वही, पृ. 110.

क्लिनिक में क्या काम होती है । पिछले दिनों एक बदनाम लड़की ने उसे मज़बूर कर दिया था कि वह उसको क्लिनिक ले चलकर अपने पाप से निवृत्त हो ।"[1] फिर भी मिसेज़ लाल के पूछने पर उसने सहमति दी ।

उसे अपने शरीर पर एक लिज-लिजा कीड़ा रेंगता महसूस हुआ । वह बेडरूम से निकलकर ड्राइंग-रूम में चला आया । सामने का पेंटिंग धुंधला लग रहा था और वह सोच रहा था कि तमाम औरतों को क्लिनिक में ले जाने का ठेका उसने ले रखा है ।"[2]

इन कहानियों में जिस मात्रा में वस्तु अजीब स्थितियों का परिचय कराती है उसी मात्रा में उसका शिल्प बिखरने का एहसास देता है । शिल्प का यह एहसास शिल्पविधि की कोई कमी नहीं बल्कि बिखराव को रचनात्मक दिशा देने का उपक्रम कर रहा है ।

भाषा की सृजनात्मकता

भाषा का सृजनशील होना रचना की अनिवार्य शर्त है । जगदीश चतुर्वेदी की कहानियों में भाषा का सीधापन दर्शित है, जो व्यक्ति के विघटन को उसकी पूरी सहजता के साथ प्रस्तुत करता है । कभी-कभी विघटित दृश्यों के ज़रिए उद्देश्य तक पहुँचने में भाषा सहायक होती है ।

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 111.
2. वही, पृ. 113.

जगदीश चतुर्वेदी की कहानी "फ्लर्ट" को ही लें । पुरुष-पात्र और स्त्री-पात्र की मानसिकता का, उनकी यौन-कुंठा का सही अन्दाज़ उनकी भाषा से मिलता है । पुरुष पात्र(परेश) अपनी पत्नी से घृणा करती है -"वैसे मैं ने कई बार सोचा है कि अपने को पत्नी के अनुरूप थोड़ा-बहुत ढाल लूँ । पर ज्यों ज्यों मैं ने इसका प्रयास किया है, पास की दूरी गहरी होती गई है और मैं अधिक उदास होता गया हूँ ।"[1] अपने मित्र अजय के साथ मिस सचदेव को देखकर उसे बहुत आत्मीय लगता है । मिस सचदेव से परेश कहता है - "यही तो सबसे बड़ा रोना है मिस सचदेव, कि मैं विवाहित हूँ । वैसे विवाह करना अपने आपमें बहुत बड़ी मूर्खता है ।"[2] "सच तो यह है कि मिस सचदेव कोई भी आदमी अपनी मिसेज़ को पसन्द नहीं करता । केवल चार-पाँच कच्ची-पक्की रोटियाँ दोनों टाइम खाने और खानदान चलाने के नाम पर व्यभिचार करने के सिवाय और क्या मिलता है शादी से ?"

"आप शादी को व्यभिचार मानते हैं, खूब । वह मुस्कुरा गई और मेरी आँखों में अपनी गीली-गीली सी आँखों की तुरमुई छाँह उंडेलने लगी ।"[3] यहाँ परेश की दिलचस्पी का परिचय मिलता है । मिस सचदेव की आदत और मानसिकता का आभास भी इनकी बातचीत से मिलता है । काफी हाउस में दोनों बैठकर बातें कर रहे हैं । "मैं सामने बैठी लड़की को देखने लगा, जो हम दोनों को काफी गौर से देख रही थी । मिस सचदेव का भी ध्यान उधर गया और वह बोल पड़ी -"फ्लर्ट" है । देखिए, कैसी भूखी नज़रों से आपको देख रही है ।

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 167.
2. वही, पृ. 170.
3. वही, पृ. 171.

"देखने दीजिए । इससे क्या बिगड़ता है । मैं ने उस लड़की की ओर देखते हुए मिस सचदेव से कहा ।"[1]

परेश ने पूछा -"अब कब मिलेंगी ? मुझे तुम्हारी कंपनी बहुत पसन्द है ।"

वह अपने बालों को बाएँ हाथ से एक खास अदा से हटाती बोली -"कभी भी, आजकल तो मैं अजय के डिस्पोज़ल पर हूँ । आज आपके साथ रहने को उसका इशारा मिल गया था ।"[2]

दूसरों को फ्लर्ट कहने के साथ-साथ दोनों की कुंठा का भी पर्दाफाश होता है । यह भाषा की सपाटता मूल्यविघटन की गंभीरता के अनुकूल है । उसे उदात्तीकृत नहीं किया गया है । अनावश्यक गंभीरताप्रदान नहीं की है । भाषा का सीधापन ही यहाँ सृजनात्मकता का परिचय देता है ।

"अधखिले गुलाब" मिश्रा की मानसिकता का सही अंकन करनेवाली कहानी है । "मिश्रा परिष्कृत रुचि का आदमी है । ढंग से रहता है, कागज़ का बिज़नेस करता है और इम्पोर्टेड वाइन पीता तथा स्मार्ट लड़कियों से मिलता है । मुझे मालूम था आज वह "हेलन डान्स स्कूल" जाएगा, और वहाँ से रोमाँ या सरोज या मिस पनवेलीवाला को लेकर रोहतक रोड की तरफ

---

1. आदिमगंध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 170.
2. वही, पृ. 172.

निकल जाएगा । थोडी बहुत पिएगा और बाद में किसी एक के साथ अपनी फर्म के ऊपर के "गेस्ट-रूम" में रात गुज़ारेगा ।"
वह बोल पड़ा -"क्यों जगदीप, कोई एतराज तो नहीं, आज हेलन स्कूल में खास प्रोग्राम है ।"[1]

"मैं मुस्कुराकर उसकी तरफ देखता हूँ । मुझे उसका साथ पसन्द है ।" मिश्रा कहता है -"जगदीप, तुम तो यार कभी हमारा साथ ही नहीं देते, चलो आज रोमाँ से तुम्हारी दोस्ती कराएँ, बड़ी प्यारी लड़की है ।

"लड़की नहीं, बड़ी सख्त औरत है । मुझे ऐसी ही औरतें पसन्द है ।"[2] मिश्रा बोलता ही रहता है -"जगदीप, अपनी तो यही ज़िन्दगी है । आजकल तो रोमाँ महमूद से इश्क लड़ा रहा हूँ । बड़ी भली लड़की है ।"[3] दोनों डान्स स्कूल से लौट जाते हैं ।

मैं लौटने पर पूछता हूँ, "लड़कियाँ थीं बड़ी स्मार्ट । ये छोटी-छोटी लड़कियाँ भी दिल्ली में ज़रूरत से ज़्यादा समझदार हो जाती है । बारह साल की लड़की में वह सब बात आ जाती है, जो पूरी औरत में होनी चाहिए ।

मिश्रा मेरी ओर बड़ी आत्मीयता से देखकर कहता है - "जगदीप सच यही है कि मुझे इन बड़ी-बड़ी हम-उम्र की औरतों से प्यार करना अच्छा नहीं लगता । मुझे तो इन छोटी-छोटी लड़कियों के साथ घूमना पसन्द है ।"

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 92.
2. वही, पृ. 93.
3. वही, पृ. 94.

मैं टोकता हूँ, "फिर रोमाँ से क्या दोस्ती कर रखी है ? वह तो बीस बाईस की होगी ।"

मिश्रा शरारत से कहता है -"उसके आधे दर्जन छोटी बहिनें हैं । सभी नाचती हैं, सभी को स्वीमिंग का शौक है । और मैं जानता हूँ कि यह सब शौक मुझे भी है, बशर्ते पार्टनर अच्छी हो ।"[1]

मिश्रा जैसी मेरी सोची हुई बात का उत्तर देता है - "जगदीप, रोमाँ से मैं क्यूँ प्यार करूँ ? वह "मिस मसूरी" रही, सैकड़ों प्रकार के आदमियों के संपर्क में आई, रोज़ नए-नए चेहरों के साथ नाचती है और आज यदि वह मुझ पर रहम कर मुझसे शादी करने के लिए भी तैयार हो जाए, तो मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि उससे शादी करूँ । हाँ, उसकी बहन डॉली से बेशक शादी की सोच सकता हूँ ।"

"मैं उससे कहता हूँ -"तुम शादी क्यों करना चाहते हो ? क्या इसी तरह ज़िन्दगी नहीं गुज़ार सकते ?"

मिश्रा कहता है -"जगदीप ! मैं अब बहुत टूट चुका हूँ, इस ज़िन्दगी से । हर लड़की से झगड़ने के बाद एक ऐसा दर्द हो जाता है, जिसे अब अधिक नहीं सहा जा सकता । मैं रोमाँ से कहूँगा कि वह मेरी बड़ी बहिन बन जाएँ और डॉली से मेरी शादी करा दो । डॉली से मैं

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 97.

इसलिए शादी कर रहा हूँ कि उससे छोटी दो बहनें और हैं, मुझे तो अधखिले गुलाब अच्छे लगते हैं, और यही मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी है । मैं जानता हूँ, इसलिए मैं डॉली से शादी करने को तैयार हुआ हूँ ।"[1]

जगदीश चतुर्वेदी की इन अकहानियों की भाषा की वास्तविक स्थिति अन्दर ही अन्दर आक्रामक है । पात्रों की जटिलता को दर्शाते समय भी भाषा अपनी-सरलता बरतती है । बहिरंगत: भाषा का रचाव शांत और ठोस है । अपनी अश्लील-वृत्ति का परिचय भी कहानी का पात्र बिना किसी घुमाव-फिराव के साथ करता है । यह उस पात्र का ढंग भर नहीं है । अत: यहाँ उसके प्रयुक्त शब्दों की अंतरंगता में घनत्व आता है और भाषा की सरलता विस्तार पाती है तथा मूल्य-विघटन की गहरी चिन्ता को व्यक्त करने लगती है । सरल भाषा का यह सहज और निर्मम प्रयोग कहानी की रचनात्मकता का एक नया आयाम है जो आगे विकसित होता गया है ।

अकहानी के शिल्प ने समकालीन कहानी को रूपायित करने में योग दिया है । शिल्प का खुलापन रचना की आत्यंतिक विवृति में परिणत होता है । यह भी देखने की बात है कि अकविता की विद्रोही-मुद्रा अकहानी में नहीं है । लेकिन असलियत की ओर एक सशक्त तर्जनी है जो जगदीश चतुर्वेदी की रचना की अपनी विशेष-भंगिमा है ।

---

1. प्रेम संबंधों की कहानियाँ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 98.

उपसंहार

उपसंहार

अकविता और अकहानी क्रमशः नई कविता और नईकहानी के पश्चात् चर्चा के केन्द्र में आई । चर्चा के केन्द्र में आने का एक सशक्त कारण है । "अकविता" नामक पत्रिका ने अकविता को आन्दोलन का जामा पहना दिया । लेकिन यह विदित बात है कि इन दोनों साहित्यिक प्रवृत्ति का उद्भव, विकास एवं उत्कर्ष अधिकाधिक एक दशक की कालावधि के बीच संभव हुआ है । इतने पर भी निषेधात्मक प्रवृत्ति से युक्त अकविता एवं अकहानी ने हिन्दी की सामान्य-धारा के सम्मुख प्रश्नचिह्न लगा दिया । वस्तुतः हमारी संवेदनात्मक-स्थिति में समग्र परिवर्तन लाने में भी इन दोनों साहित्यिक प्रवृत्ति का योगदान है ।

अकविता और अकहानी के केन्द्र में जगदीश चतुर्वेदी है । इसका यह अर्थ नहीं है कि वे ही इसके कर्ता-धर्ता हैं । यह जानी हुई बात है कि जगदीश चतुर्वेदी अकविता और अकहानी के पुरोधा और प्रवक्ता हैं । अपनी रचनाशीलता के माध्यम से उन्होंने इस नए आन्दोलन को वैचारिक धरातल प्रदान किया है । उनकी विशेषता यही है कि उन्होंने सिद्धांतों से रचनाशीलता को ढकने का कार्य किया नहीं है । रचनाओं की आधारभूत स्थिति के रूप में अकविता-संबंधी बात या अकहानी-संबंधी बातें शनैः शनैः उभर कर आयी हैं । यद्यपि जगदीश चतुर्वेदी और अन्य अकवि अकविता को समय-समय पर परिभाषित करने का कार्य करते रहे हैं फिर भी उनकी कविताएँ दरअसल अकविता की सरल परिभाषा बनकर हमारे सामने आई । उनके द्वारा रचीकृत बिम्ब और प्रतीक-विन्यास इतने सूक्ष्म और जटिल थे कि अकविता ने अपने में एक अजीब संसार रच डाला । यही नहीं अकविता की मूलभूत-स्थिति का एक बदला हुआ संसार

अकविता ने सृजित किया । कहने का मतलब यह है कि अकविता को परिभाषित होने के लिए सिद्धांतों की बैसाखी की आवश्यकता नहीं हुई । अतः एक दशक की कालावधि में ही उसने हिन्दी कविता की दिशा और दशा को परिणत करने का कार्य किया ।

अकविता और अकहानी आरोपों-प्रत्यारोपों के शिकंजे में अगर पड़ी हैं तो उसका प्रमुख कारण उसके असामाजिक होने को लेकर है । ठोस सामाजिक-स्थिति को शब्दबद्ध न करने के कारण, एक सुस्पष्ट सामाजिक दिशा को रेखांकित न करने के कारण अकविता और अकहानी सर्वसम्मति से स्वीकृत नहीं हुई । यह सही है कि इन दोनों काव्य-प्रवृत्तियों की मूल-धारा प्रगतिशीलता नहीं है । यही नहीं कि इस प्रवृत्ति के तहत लिखी हुई रचनाओं के केन्द्र में व्यक्ति रहा है । अपनी अस्मिता की खोज में लगे हुए और भीषण-यथार्थ के मध्य में पिसते हुए व्यक्ति को अकवियों ने और अकहानीकारों ने प्रस्तुत किया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों साहित्यिक-प्रवृत्तियाँ अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित हैं । जहाँ तक उसकी सामाजिकता का सवाल है वह इन में उस रूप में प्रकट नहीं है जिस रूप में वह प्रकट होती रही है । वास्तव में जगदीश चतुर्वेदी ने उस विकराल यथार्थ को ही प्रस्तुत किया है, जो हमारे आसपास घटित होता है । लेकिन उनका तेवर या तो आक्रामक है या कुंठित । इस कारण से तमाम नैतिकताओं को बुलन्द आवाज़ में घोषित करने का कार्य उन्होंने किया है । उनकी शब्द-भंगिमा मानो घोषणाएँ हों । बराबर उन्होंने असामाजिक होने का दावा भी किया है । लेकिन सवाल यह है कि ऐसा क्यों हुआ एकाएक किसी साहित्यिक प्रवृत्ति में या किन्हीं रचनाकारों में यह भंगिमा क्यों आती है, क्या यह मात्र शब्दों का अपव्यय है ? ऐसा प्रतीत होता है कि अकविता-अकहानी,

जगदीश चतुर्वेदी की रचनाएँ आदि पर विचार करते समय उस समय की बदलती हुई सामाजिक अवस्था को इन आरोपकर्ताओं ने नज़र-अन्दाज़ किया है । कोई भी रचनाकार विध्वंसक नहीं है । उसकी विध्वंसक-प्रवृत्ति में सकारात्मक-दिशा भी होती है । वस्तुतः इस सकारात्मक-दिशा को अकविता-अकहानी की चर्चा ने बराबर दरकिनार किया है । यही सकारात्मक-दिशा जोकि अनेक विध्वंसक और आक्रामक शब्द-प्रयोगों के बीच में प्रकट नहीं हुई । हिन्दी साहित्य में इन काव्य-प्रवृत्तियों और जगदीश चतुर्वेदी के ऐतिहासिक महत्त्व का यही कारण है ।

जगदीश चतुर्वेदी अत्यंत संवेदनशील साहित्यकार हैं । उनकी काव्य-भंगिमा के आरंभिक स्वर को सुनने का कार्य करेंगे तो आश्चर्य हो सकता है कि वे छायावादी दौर से भी गुज़र कर आए हैं । लेकिन उनकी कविता शीघ्र अपना तेवर प्राप्त करती है । "पूर्वराग" की कविताएँ इसलिए शीघ्र ही "इतिहासहन्ता" की कविताओं में विकसित होती हैं । सौंदर्य चेतना की काल्पनिक और मोहक आतुरता कम समय में लुप्त होती है । उस आधार पर भी उनकी मांसलता देखने लायक है । देशप्रेम और स्वतंत्रता-प्रेम की कविता के कवि होकर भी जगदीश चतुर्वेदी का व्यक्तिबोध सशक्त और प्रखर है । अपने को खोजता हुआ व्यक्ति, अपनी अस्मिता के संघर्ष से गुज़रता व्यक्ति उसकी अस्तित्व चिन्ता को कविता के केन्द्रीय विषय के रूप में जगदीश चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किया । इसलिए बाहरी दुनिया की वे सारी स्थितियां जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में मिलती नहीं हैं जो हम सामान्यतः कविता में ढूँढते हैं । राजनीतिक विसंगति पर आलोचना करने के बजाय उस राजनीतिक प्रसंग को अन्धेरी गुफा में बन्द समझने का नज़रिया जगदीश चतुर्वेदी की कविता देती है । सामाजिक विसंगतियों को अतिशयोक्तिपूर्ण-भंगिमा में प्रस्तुत करके तिरस्कार का व्यापक जाल वे बुनते हैं ।

ये सब इनके कविकर्म के परिदृश्य हैं । उनके व्यक्तित्वपक्ष को स्पृहणीय बनाने वाले अनेक पक्ष भी हैं ।

जगदीश चतुर्वेदी की अकविताएँ एक विशेष कालावधि की मानसिकता की अभिव्यक्ति हैं । नई कविता और नई कहानी के दौर में भी मोहभंग की बात उठी थी । असल में मोहभंग की चरम-सीमा का परिचय जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में प्राप्त है । मोहभंग दिशा-निर्देश करनेवाला मानसिक भाव नहीं है । अवसाद की स्थिति में नकारात्मक-मुद्रा उपजने लगती है । राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन ने मनुष्य मात्र को जिस हद तक तहस-नहस किया है, उसके प्रतिरोध में जगदीश चतुर्वेदी की अकविता अपनी नकारात्मकता के बावजूद कहीं खोजती नज़र आती है । मर्यादाओं और शालीनताओं का खंडन उन्होंने किया है । वह इसीलिए है कि मर्यादा ने झूठी मर्यादा का आभास ही दिया है । शालीनता अपनी मौलिकता खो चुकी है । इसलिए उनकी कविता एन्टी-स्थितियों की अभिव्यक्ति हो गयी । जब हिन्दी में ऐसी कविताएँ लिखी जा रही थीं तब दूसरी भाषाओं में भी ऐसे ही एन्टी-साहित्य का प्रचलन था । अलग-अलग भाषाओं में अपने-अपने ढंग से एन्टी-साहित्य ने या एन्टी-कविता ने विशेष रूप अपनाया । उसका एन्टी होना अनिवार्य था । परन्तु जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं ने उसके साथ अस्मिता के संकट को भी विषय बनाया । इसलिए उनकी कविता में व्यक्तिमन का तड़पता हुआ एक परिदृश्य मिलता है । लेकिन उसके एन्टी होने के पीछे समय का पूरा दबाव है और विघटन की तमाम विकराल स्थितियाँ हैं ।

कविता की विध्वंसकता जैसे उपरिवत् सूचित है, समय के दबाव का परिणाम है । लेकिन यह प्रवृत्ति दीर्घकाल तक रहती नहीं है । जगदीश चतुर्वेदी की अकविताओं में अस्पष्ट ढंग से विद्यमान सकारात्मक दिशा उनकी परवर्ती कविताओं में अहिस्ता-अहिस्ता बल पकड़ने लगती है । ये अपने को परिवर्तित करने का उपक्रम नहीं, बल्कि उनकी रचना-प्रक्रिया का क्रमिक विकास है । जगदीश चतुर्वेदी का मिथक काव्य "सूर्यपुत्र" इसका पहला निदर्शन है । आगे की कविताएँ समय के बृहत्तर यथार्थ को शब्दबद्ध करने का रचनात्मक प्रयास है । अकविता से लेकर आज तक की उनकी कविताएँ हिन्दी कविता के विकास-क्रम को सूचित करने में सहायक हैं । एक ओर वह कविता के कथ्य के विभिन्न आयामों से संबंधित हैं तो दूसरी ओर हिन्दी कविता की कलात्मकता के विभिन्न शिखरों का परिचय भी देती है । इस अर्थ में उनकी कविताएँ हिन्दी कविता की मुख्य-धुरी के साथ जुड़ी हुई हैं ।

जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं की तुलना में उनकी अकहानियाँ उतना सक्षम और संपुष्ट नहीं है । लेकिन जैसे कविता के संबंध में बताया गया, उनकी कहानियाँ भी हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास के बीच में एक बदली हुई मानसिकता का परिपाक है । वास्तव में उनकी कहानियाँ, विशेषकर उनकी प्रेम-संबंधों की कहानियाँ प्रेम के शालीन-पक्ष का खुला तिरस्कार है । ऐसा प्रतीत हो सकता है कि यौन-स्वैराचार के प्रति उनकी कोई विशेष दिलचस्पी हो । मगर प्रेम के शालीन-पक्ष के इस तिरस्कार-पूर्ण-व्यवहार में हमारी मनः-स्थितियों एवं हमारे आचरण के खोखलेपन को संभवतः उन्होंने प्रस्तुत किया है । हर युग में शालीनता की तह में अश्लीलताओं का एक मंच था । पर साहित्य ने इस पक्ष को कभी उभारा नहीं । जगदीश चतुर्वेदी की अकहानियों ने शालीनता

के इस झूठे चेहरे का पर्दाफाश किया है । अतः उनकी कहानियाँ हमारी वास्तविकता की बेनकाब-अवस्थाएँ हैं । समकालीन दौर में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है । संभवतः यह जगदीश चतुर्वेदी और उनके सहयोगियों की कथा-प्रवृत्ति का परवर्ती स्वरूप हो ।

अपनी रचनाओं में जगदीश चतुर्वेदी अत्यंत सृजनात्मक हैं । प्रत्येक शब्द उनके हाथों सृजनात्मक होते हैं । चाहे वह कविता में प्रयुक्त बिंब से संबंधित हो या कहानी का कोई सामान्य संवाद हो । दोनों से एक सृजनात्मक-संसार विकसित होता है । इस कारण से तमाम विरोधों के बावजूद उनकी रचनाएँ बल प्राप्त करती रहीं । जगदीश चतुर्वेदी का रचना-संसार हमारे समय की भीतरी स्थितियों का संसार है । जिसके दृश्य कभी हमें सुन्दर नहीं लग सकते । असुन्दरता के संसार को बराबर उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है । पर वह सुन्दरता की खोज का मूल पहलू भी है ।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंधा युग – धर्मवीर भारती
1968, किताब महल
इलाहाबाद ।

2. अकविता और कला संदर्भ – डॉ. श्याम परमार
प्र. सं. 1968
जयकृष्ण अग्रवाल
अजमेर.

3. आखिरी दशक की लंबी कविताएँ - 2 – सं. नागेश्वर लाल व रमणिका गुप्ता

4. आठवें दशक की हिन्दी कविता – सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
1982, कीर्ति प्रकाशन
गोरखपुर

5. आदिमगंध – जगदीश चतुर्वेदी
1995, प्रवीण प्रकाशन
नई दिल्ली - 30.

6. आधुनिक हिन्दी कविता – जगदीश चतुर्वेदी
1975, दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि.

7. आधुनिक कविता नए संदर्भ – डॉ. वीरेन्द्र सिंह
1975, पंचशील प्रकाशन
जयपुर - 3.

8. आधुनिकता और सर्जनशीलता - रघुवंश
1980, मैकमिलन कंपनी इंडिया लि.

9. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - नामवर सिंह
1990, लोकभारती प्रेस
इलाहाबाद - 1.

10. आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में - गंगाप्रसाद विमल
1978, दि मैकमिलन कंपनी इंडिया लि.

11. आधुनिक हिन्दी कहानी - सं. गंगाप्रसाद विमल
1978, मैकमिलन कंपनी इंडिया लि.

12. इतिहासहन्ता - जगदीश चतुर्वेदी
1984, जगत् राम एण्ड सन्स
दिल्ली - 31.

13. कपास के फूल - जगदीश चतुर्वेदी
1960, नीरजा प्रकाशन
लुधियाना ।

14. कवितान्तर - सं. जगदीश गुप्त
1973, ग्रंथम्
कानपुर - 12.

15. कविता की मुक्ति - नन्द किशोर नवल
1980, वाणी प्रकाशन
दिल्ली - 7.

16. कैक्टस और गुलाब		- जगदीश चतुर्वेदी 1982, पंकज प्रकाशन दिल्ली - 35.
17. क्योंकि समय एक शब्द है		रमेशकुंतल मेघ 1975, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद - 1.
18. जगदीश चतुर्वेदी	विवादास्पद रचनाकार	- सं. कमलकिशोर गोयनका 1985, पल्लवी प्रकाशन दिल्ली - 92.
19. जलते और उबलते प्रश्न		- डॉ. विश्वनाथ उपाध्याय 1969, बोहरा प्रकाशन जयपुर.
20. जिरह		- श्रीकांत वर्मा 1973, संभावना प्रकाशन हापुड़ (उ.प्र.)
21. जीवन का संघर्ष		- जगदीश चतुर्वेदी 1954, शलभ साहित्य प्रकाशन उज्जैन.
22. डूबते इतिहास का गवाह		- जगदीश चतुर्वेदी 1980, प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली.
23. दस्तावेज़		- जगदीश चतुर्वेदी 1980, [illegible] पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली - 12.

24. दिशान्तर - सं. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव व
डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
1981, अनुराग प्रकाशन
वाराणसी.

25. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
1973, राजपाल एण्ड सन्ज़
दिल्ली.

26. नयी कविता - देवराज
1994 वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली - 2.

27. नयी कविता कथ्य एवं विमर्श - डॉ. अरुण कुमार
1988, चित्रलेखा प्रकाशन
इलाहाबाद - 6.

28. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध - गजानन माधव मुक्तिबोध
1964, विश्व भारती प्रकाशन
नागपुर.

29. नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकांत वर्मा
भारती प्रेस प्रकाशन
कलकत्ता

30. नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति - डॉ. देवीशंकर अवस्थी
1973. राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - 6.

31. नए मसीहा का जन्म - जगदीश चतुर्वेदी
1980, पल्लवी प्रकाशन
दिल्ली - 92.

32. नए साहित्य का सौंदर्य शास्त्र - मुक्तिबोध
1971 राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली.

33. निषेध - सं. जगदीश चतुर्वेदी
1972, इनशारती प्रकाशन
दिल्ली - 7.

34. पूर्वराग - जगदीश चतुर्वेदी
1982, राजेश प्रकाशन
दिल्ली - 51.

35. प्रारंभ - सं. जगदीश चतुर्वेदी
1963, भारत भारती प्रकाशन
नई दिल्ली - 7.

36. प्रेम-संबंधों की कहानियाँ - जगदीश चतुर्वेदी
1992, किताबघर
दिल्ली - 2.

37. फिल्हाल - अशोक वाजपेयी
1970, राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - 6.

38. भारतीय कहानी - सं. जगदीश चतुर्वेदी
1976, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
नई दिल्ली

39. महाप्रस्थान - जगदीश चतुर्वेदी
1978, वसुन्धरा पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली.

40. मैं और मेरी कहानी - सं. श्रवण कुमार
1990, किताब घर
नई दिल्ली

41. रश्मिरथी - रामधारी सिंह दिनकर
1960, उदयाचल
पटना - 4.

42. लंबी कविता गतिशील यथार्थ की पहचान - डॉ. रत्नलाल शर्मा

43. विजप - गंगाप्रसाद विमल
जगदीश चतुर्वेदी
श्याम परमार
1967, राधाकृष्ण प्रकाशन
दिल्ली - 6.

44. विद्रोह और साहित्य - सं. डॉ. नरेन्द्र मोहन
1974, साहित्य भारती
दिल्ली - 51.

45. विवर्त - जगदीश चतुर्वेदी
1981, किताब घर
दिल्ली - 31.

46. समकालीन कविता की भूमिका सं. डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय
1976, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि.

47. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि सं. डॉ. धनंजय
1970, अभिव्यक्ति प्रकाशन
इलाहाबाद - 2.

48. समकालीन लघुनाटक - सं. विष्णु प्रभाकर व सुरेन्द्र तिवारी
1987, प्रभात प्रकाशन
नई दिल्ली.

49. समकालीन हिन्दी कहानी प्रकृति और परिदृश्य - यदुनाथ सिंह
1978, चित्रलेखा प्रकाशन
इलाहाबाद - 6.

50. समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता - रघुवंश
1972, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
आगरा - 5.

51. साठोत्तरी हिन्दी कविता - परिवर्तित दिशाएँ - विजयकुमार
1986, प्रकाशन संस्थान
नई दिल्ली - 2.

52. साठोत्तरी हिन्दी कविता की वस्तु चेतना - डॉ. बादाम सिंह रावत
1984, गिरनार प्रकाशक
मेहसाना ।

53. सार्थक कविता व्यक्ति की तलाश -
1993, प्रवीण प्रकाशन
दिल्ली - 30

54. सूर्यपुत्र
जगदीश चतुर्वेदी
1975, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लि.

55. हिन्दी कविता आधुनिक आयाम
डॉ. रामदरश मिश्र
1978, वाणी प्रकाशन
दिल्ली - 7.

G5619 -

56. हिन्दी कहानी का विकास - डॉ. लाल चन्द्रगुप्त मंगल
1988, संजीव प्रकाशन
कुरुक्षेत्र

57. हिन्दी कहानी पहचान और परख - सं. डॉ. इन्द्रनाथ मदान
1973, लिपि प्रकाशन
दिल्ली - 51.

58. हिन्दी कविता संवेदना और दृष्टि - राममनोहर त्रिपाठी
1986, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली - 110002.

59. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती - सं. डॉ. नगेन्द्र
1972, विनोद पुस्तक मन्दिर
आगरा.

60. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेन्द्र
1988, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली - 2.

61. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - गणपति चन्द्र गुप्त
1989, महात्मा गाँधी मार्ग
इलाहाबाद - 1.

62. हिन्दी साहित्य - नई रचनाशीलता - सं. सतीश जमाली
1982, नयी कहानी प्रकाशन
इलाहाबाद - 6.

पत्र-पत्रिकाएँ

नई धारा	-	जून-जुलाई 1983.
पहल	-	अंक - 13.
पूर्वग्रह	-	जुलाई-अक्तूबर - 1980.